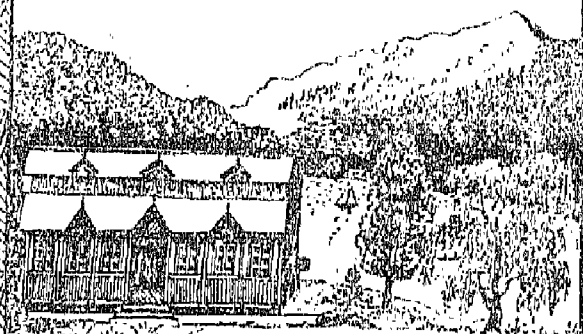

Durga Sah Municipal Library

NAINI TAL

दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय

नैनीताल

Class No. 891.38

Book No. So 50 P

Reg. No. 3750

पूनम के साये

Durga Sah Municipal Library,
NAINITAL.
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाईब्रेरी
नैनीताल
Class No. 891.38
Book No. So 50 P
Received on Nov 5

प्रथम संस्करण
१९५६

मूल्य
तीन रुपये

3152

मुद्रक —: भारत प्रिंटिंग प्रैस, रेलवे रोड, जालन्धर नगर।
प्रकाशक :—भारतीय संस्कृत भवन, माई हीरां गेट, जालन्धर।

मोहन चौधरी

पूनम के साये

भारतीय संस्कृत भवन
जालन्धर

तेरी नरगिसी आंखों की क़सम !
चाहता तो अब भी हूँ—
तेरी ज़ुल्फ़ के साये में
जवानी को सुला दूँ।
मगर पूछता हूँ यह सवाल तुम्हीं से—
क्या होगा इन उजड़ी हुई मांगों का,
कौन सीने से लगायेगा
इन बिलखते हुए नन्हें २ से ईसाओं टैगोरों को ?
तू आ ! और बढ़कर इन्हें
छाती से लगा ले
इन्हीं में हमारे प्यार का भवितव्य छिपा है।

अपने गांव की धूल

और

रावी की रेती के नाम

जीवन जिस में हम जीते हैं, और जीवन, जिसके लिये हम जीते हैं—इन कहानियों की ज़मीन है। इन कहानियों में मेरा कुछ नहीं। जो है, मेरी पीढ़ी का दिया है। मेरी पीढ़ी गत अनागत पीढ़ियों का दामन थामे है। मेरा है, तो केवल इतना कि जीवन के जिन खण्डों को मैं ने चुना है, वे मेरे दिमाग़ से छनकर निकले हैं। फिर भी मैं समझता हूँ—लौटाना एक बात है, देना दूसरी। कलाकार जब पहली बात पकड़े है तो उसका अहम् कहां टिकता है?...जिन्दगी की इस कड़ी धूप और पूनम में ऐसे २ साये दिखाई देते हैं कि सहज में उनसे दामन बचाकर निकल जाना संभव नहीं। वे साये जिन्दगी की धूल और गुलाल में लिपट कर इन कहानियों में उतरे हैं। हो सकता है—इन कहानियों में वर्तमान के प्रति असन्तोष और विद्रोह का स्वर मिले। मैं उसे स्वाभाविक मानता हूँ। दूसरे, रोटी की जिस व्यवस्था ने मेरी कहानियों की पीठ पर कोड़े लगाये हैं, उस से गले मैं कैसे मिल लूँ! मेरा विश्वास है कि जब तक यह व्यवस्था क़ायम है, हमारी जिन्दगी की खून-खायी तस्वीरें उभरती रहेंगी और दुनिया का हर कलाकार इसी तरह कुलबुलाता रहेगा। सो, ये कहानियां इस व्यवस्था को मिटाने के लिये दुनिया भर में जारी संघर्ष के हथियार बन सकें, तो इनकी लाज रह जाये।

पठानकोट

एप्रिल १३, १९५६

रमेश बी चौधरी

अनुक्रमणिका

मण्डी	...	९
सांकल	...	२३
सौदा	...	३७
बरखा	...	४५
चौबरसी	...	५५
डा० ऊषा नरेन	...	६७
समय की बांहें	...	८१
गुरु बनाम ईश्वर	...	९९
सील मुर्ग़	...	१०७
सत्ति	...	१२५
पूनम के साये	...	१३९

मण्डी

बकरोटा रोड के पहले बेंच के पास खड़ हो कर लाला नन्दकिशोर ने अपने साथी को आवाज़ दी, "क्या बात है पण्डित, जल्दी चलो ! यह देखो कितनी अच्छी सीनरी है।"

सांस फूल गया था। गर्दन पीछे करते हुए कमर पर दोनों हाथ रख कर लालाजी ने सांस लेनी शुरू की। पण्डित रत्नचन्द ने क़दम तेज़ किए। लालाजी के पास पहुँच कर पण्डित ने तेज़ साँस लेते हुए इधर उधर देखना शुरू किया। नीचे बाथरी खड्ड और उस के ऊपर बेलून छावनी, कश्मीर की बरफ़ानी चोटियों तक खुला विस्तार। ज़रा बाईं ओर गर्दन घुमाई तो ठण्डी सड़क की कुछ कोठियाँ दिखाई दे रही थीं। उन की नज़रें मोतीटिब्बा पर से तैरती हुई वापिस लौट आयीं। माथे पर से पसीना पोंछ कर पण्डित ने लाला जी से चल पड़ने को कहा। अब दोनों साथ २ चलने लगे थे। शायद उन्हों ने जान लिया था कि चढ़ाई में तेज़ चढ़ना हमाक़त है। लालाजी ने अपने बन्द गले वाले लम्बे कोट के बटन खोल लिये थे और कभी २ कमर पर हाथ रख कर टुक रुकते हुए पण्डित से बात कर लेते थे।

बकरोटा की चढ़ाई समाप्त कर वे धूपघड़ी के पास पहुँचे तो उन्हें दोनों ओर जाती हुई समतल सड़क दिखाई दी। सामने पहाड़ के साथ लेटर-बक्स के पास एक मानचित्र लकड़ी के चौखटे में गढ़ा था। लालाजी ने पास

जा कर उसे देख भर लिया और वापस पण्डित की ओर आ गए। पण्डित पास ही सड़क के किनारे शेड के स्तम्भ के सहारे टेक लगा कर खड़ा था। लाला-जी दोनों पैरों को ज़मीन पर पटकते हुए इधर उधर घूमफिर कर उस ठण्डी हवा का मज़ा लेने लग। फिर पास की कोठी में खेल रहे बच्चों की ओर देखते रहे। वहां से हट कर लालाजी पण्डित की ओर उन्मुख हो कर बोले, "बहुत जबरदस्त चढ़ाई है यार।"

पण्डित लालाजी का यह वाक्य वापस लौटाता हुआ बोला, "यह क्या है, चढ़ाई तो आगे मिलेगी।" यह बात लालाजी को ज़रा झंझोड़ गई, जैसे चार नम्बर कारतूस का छर्रा उन के शरीर में आ चुभा हो। लेकिन लालाजी बड़ी हिम्मत के स्वर में बोले, "फिर क्या हुआ, वह भी देख लेंगे। चलो, अब तो सीधी सड़क है।"

वे दोनों बाईं ओर को चल दिए। डलहौज़ी से चलते समय उन्होंने रास्ता अच्छी तरह मालूम कर लिया था।

आज मौसम सुहाना था। बरसात अभी खत्म होकर ही चुकी थी; घर को लौटती हुई बादलों की टुकड़ियां आकाश में मण्डरा रही थीं, जिन से दृश्य को सुघरता मिलती थी। चढ़ती दुपहर में ठण्डी हवा बहुत अच्छी लग रही थी। वे दोनों सोच रहे थे कि इस समय मैदान में तो बाहर निकलने की सोची भी नहीं जा सकती। एक ओर पहाड़ का पेट और सड़क के दूसरी ओर बन और देवदार के ऊँचे पेड़ खड़े थे। चढ़ाई चढ़न से पसीने की जो बूँदें उन के माथे पर आगई थीं, अब हवा लगने से सूख चुकी थीं। ऐसे म दोनों बहुत सुहाना महसूस कर रहे थे। उस सुहावनेपन का एक तार पकड़ते हुए लालाजी बोले,

"भाई मैं तो कहता हूँ कि हर साल डलहौज़ी आना चाहिए। सारा साल सुबह से शाम तक कपड़े के थान लपेटते २ और गाहकों से मग़ज़पच्ची करते गुज़र जाता है। फिर अमृतसर की गलियाँ और डलहौज़ी की सड़कें, जहन्नम और जन्नत वाली बात है पण्डित!"

पण्डित जानता था कि यह बात के लिए ही बात है, इस से अधिक इस में सार नहीं है ; लाला ज़िन्दगी में शायद पहली बार पहाड़ आया है, वह भी बीवी की करामात से, वर्ना यह कहाँ अमृतसर छोड़ने का। यहाँ से लौटते ही उन्हीं बही-खातों में उलझ जाएगा और रुपये आने पाई के चक्कर में मस्त रहेगा। अब सांत्वना देने की बारी पण्डित की थी। उसी लहजे में बोला,

"हाँ लाला जी, इतना कमाते हैं अपनी काया को भी सुख न मिला तो दौलत मिट्टी का ढेर है। फिर आप की तो उम्र भी अभी खाने पीने और मौज उड़ाने की है। क्यों लालाजी यही होगी कोई चौत्तीस बरस की ?"

लालाजी पण्डित की ग़लतफ़हमी दूर करते हुए बोले, "अरे नहीं यार, अभी थोड़े दिन हुए इकत्तीसवां लगा है। अभी तीन साल तो हुए हैं मेरी शादी हुए और तुम चौत्तीस गिन रहे हो। तुम्हारे हिसाब से तो मुझे पाँच छः बच्चों का बाप होना चाहिए। जब कि अभी मैं खुद बच्चा हूँ।"

लालाजी ने बच्चों की गिनती यूं की जैसे साल म एक बच्चा पैदा करना हर दम्पति के लिये अनिवार्य्य हो। और अपने सम्बन्ध में जैसे उन से कोई चूक रह गई हो। पण्डित की बात उन्हें बुरी तो न लगा थी। वस्तुतः उन के दिमाग़ में कुछ अटक गया था। एक पत्थर पर पैर टिकाते हुए अपने चूड़ीदार पायजामे को झाड़ कर लाला जी बोले "अच्छा जो उसे मन्जूर है, सो ही होगा" और उन्हों ने दिमाग़ में अटका 'कुछ' दूर हटा फेंका। क्योंकि वह जानते थे कि चूक रह नहीं गई, आगे भी रहेगी और उन्हें खुद सदा बच्चा बने रहना होगा।

कलाश-कोठा के साथ वाले बेंच के पास पहुँच कर लालाजी पुनः रुक गये। लालाजी को रुकते देख कर पण्डित भी खड़ा हो गया। दोनों हाथ कमर पर रखते हुए लालाजी ने पाँव बेंच पर टिका दिया, "कितनी खूबसूरत सीनरी है यार—" पण्डित ने भी सिर हिला कर हामी भर दी। वहां खड़े

हो कर आँखों ने क्या देखा, दिल ने क्या महसूस किया, दिमाग़ की पकड़ में क्या आया, यह एक सुलझी हुई ग्रन्थि है। आखें देख रही हैं—सामने आसमानी शून्य की पृष्ठभूमि लिये मण्डरा रहे आवारा सफ़ेद बादल, कालाटॉप की हरी-भरी चोटी जो आकाश को चूम लेने भर के लिये युगों से तरस रही है, नीचे करेलू घाटी का सूनापन जिसे घाटी के झरनों, जल प्रपातों का संगीत और भी गहरा कर रहा है, कुछेक झोंपड़ियों से धुआं उठ उठकर वायु-मण्डल में फैलता जा रहा है, जैसे किसी मसीहा की खोज में खो गया हो; कोलहड़ी के रास्ते चम्बा को जाने वाली सड़क सांप की तरह पहाड़ की कमर से लिपटी हुई है। यह सब दिल को सुहाना लग रहा था। ऐसे में दिमाग़ तो यह मान भर लेता है कि कुछ तो है जो मन को लील गया है। वह 'कुछ' क्या है, यहां फिर गुंझर है। दोनों के दिलोदिमाग़ पर झरनों की फुहार छा गई थी। उन्हों ने सिगरेट सुलगाये और धुआं उड़ाते हुए आगे को चल दिये। हौज़ के पास से उन्हें बाईं ओर मुड़ना था। लेकिन नल से पानी पीने के लिये वे खड़े हो गये। पण्डित ने झट से नल के नीचे मुंह कर दिया और एक ही सांस में पानी से पेट भर लिया। हालांकि लालाजी ने टोका भी कि थोड़ी देर ठहरकर पानी पीना चाहिये। वर्ना पेट दर्द होने का डर रहता है। इतने में बाईं ओर के मोड़ से उन्हें कुछ घंटियों की आवाज़ सुनाई दी। आवाज़ उन्हीं की ओर बढ़ती आ रही थी। थोड़ी देर में आलुओं की बोरियों से लदे तीन घोड़े मोड़ से निकलते हुए दिखाई दिए। घोड़े वालों से उन्हों ने सरसरी तौर पर पूछा कि यहाँ से लकड़मण्डी कितनी दूर है। उत्तर मिला—यही कोई दो मील हो गी। टुनटुनाती घंटियां बकरोटा राऊंड की ओर बढ़ गयीं और वह अपनी राह चल दिये। पहाड़ की छाती से सिमकर आने वाले झरनों से अठखेलियाँ करते हुए वे चलते जा रहे थे। 'बारह पत्थर' के अगले मोड़ को उन्हों ने पार किया ही था कि सामने से एक पहाड़ी युवती पीठ पर कोयलों का बिल्टा उठा कर उन की ओर बढ़ती आ रही थी। पास आने पर लालाजी ने गर्दन

के इशारे से उसे खड़ी कर लिया और पूछा कि वह किल्टे का क्या लेगी। "एक रुपया, अगर शहर छोड़ने होंगे तो डेढ़" युवती ने सीने पर लटक रही चाँदी के बटनों की ज़ंजीरी पर हाथ फेरते हुए बताया। पण्डित एकटक युवती को सिर से पांव तक देखकर टटोल रहा था। कुछ २ उस ने हिसाब भी लगा लिया था।

"कोयले कच्चे हैं या पक्के ?" लालाजी के इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये युवती के लाल होंठ एक दूसरे से जुदा होने को थे कि पण्डित बोल उठा, "अजी कोयले तो एक तरफ़, यह खुद भी पकी हुई है।"

युवती की गालें लाल हो गयीं। ज़रा गर्दन झुका कर सिर पर बंधे लाल पटके पर उस ने हाथ फेरा। उन दोनों की ओर देखती हुई उन बड़ी २ आंखों का सूनापन साक्षी था कि वह पण्डित के उस वाक्य का अर्थ नहीं जान पाई। लालाजी की आंखें कुछ मस्ताई जा रही थीं ; जैसे युवती के गालों की लाली उड़ उड़कर लालाजी की आंखों में समाती जा रही हो। लालाजी कुछ आगे को सरकते हुए होठों को ज़रा तरेरते से बोले, "दो रुपये दूँगा... और यहीं.....।"

युवती सुन्न सी रह गई। आंखें फाड़ फाड़ कर उन दोनों की ओर देखने लगी। उसका चेहरा तांबे जैसा हो गया। होंठ उसके क्रोध से कांप रहे थे।

"बहन नहीं है घर ? वह भी गोरी चिट्टी जवान होगी, उस को देना....." कहकर किल्टे को कमर के झटके से ठीक करती हुई उनकी ओर घूरकर आगे को चल दी। वे दोनों पक्के कोयले से भरे किल्टे को देखते रह गए।

थोड़ी देर के लिए लालाजी पर चुप्पी तारी हो गई। वस्तुतः अब उनके दिमाग पर उन की जीवन-संगिनी के खूबसूरत चेहरे की गोराई छा चली थी। तभी उस खूबसूरत चेहरे को धुंधलाता हुआ एक और स्वस्थ

सा चेहरा बदली की तरह उमड़ता उनके दिमाग़ पर छाने लगा। यह चेहरा उन के पड़ोसी नौजवान का था। वह नौजवान लालाजी को बहुत असभ्य लगता था। जब भी लालाजी के घर की कोई खिड़की खुली होती, वह अपनी खिड़की में आकर खड़ा हो जाता और एक टक खिड़की के भीतर घूरता रहता। या सामने बरान्दे में चक्कर काटना शुरु कर देता। इस की चर्चा लाला जी ने कई बार पण्डित से भी की थी। पण्डित ने भी आजकल के फक्कड़ नौ-जवानों पर लानत भर भेज दी। लालाजी ने उस नौजवान को मन ही मन एक सभ्य सी गाली देकर दिमाग़ से झटक फेंका। फिर एकाएक पण्डित की ओर गर्दन घुमाई, "यह तो बड़ी तेज़ थी!" पण्डित ने लालाजी के इन शब्दों पर ध्यान नहीं दिया। वह जानता था कि उन से कोई चूक रह गई है, कि उन्हों ने जल्दबाज़ी से काम लिया है, उन्हें सलीका बरतना चाहिए था। उसे लालाजी पर बहुत खीज आ रही थी। पण्डित माथे को सिकोड़ता हुआ कहने लगा,

"अरे भाई, यह कोई सब्जीमण्डी की नीलामी थी जो अठन्नी चढ़े थे? सीधे पांचा हाथ में थमाते, देखता कैसे न खड्ड में उतर चलती...हूँ...।" बात लालाजी को छू गई। अपनी ग़लती महसूस कर चुप रहे।

"आल्हा" की दूकान से दूध में जलेबियाँ डलवा कर पी चुकने के बाद वे पुनः चल दिये। अब लकड़मण्डी की चढ़ाई आरम्भ हो गई थी। वे धीरे २ चढ़ रहे थे। राह में ढोगरी स्त्रियों और युवतियों का एक छोटा सा झुंड कोय-ला शहर ले जाते हुए उन्हें मिला। अब की बार उन्हों ने ठान ली थी कि रुपये के हाथों चूकेंगे नहीं। लेकिन ठानी बात ठानी ही रह गई। कोई युवती उन्हें अकेली न मिली कि चूकने न चूकने का प्रश्न उठता। लकड़मण्डी अभी कुछ दूर थी और टांगे बराबर गर्मी पकड़े थीं।

लकड़मण्डी का मोड़ मुड़ते ही उन्हें सामने शेड और शहतीरियों के अम्बार दिखाई दिये। मंजिल पर पहुँचकर उन्हों ने सुख की सांस ली और इधर-

उधर घूमने लगे। कालाटांप को जाने वाली सड़क पर चहलदक़मी करते हुए उन्हों ने कोयले-वालियों की झोपड़ियों की टोह लेनी शुरु की। दो तीन युवतियाँ वहाँ मिट्टी के घरों की छत्तों पर धूप ताप रहीं थीं। अधिकतर कोयला बेचने शहर को चली गयीं थीं। वे सड़क के किनारे एक कटे वृक्ष पर बैठे सिगरेट फूँकते रहे। सोच रहे थे कि काम बने कैसे ? सामने दूकानों से पीछे, डायनकुण्ड की सड़क पर एक बुढ़िया चढ़ती दिखाई दी। अकस्मात् पण्डित का माथा ठनका। वह लालाजी को साथ लेकर उधर को हो लिया। चलते २ उसने लालाजी को सारी योजना समझा दी। लालाजी का चेहरा कुछ खिल सा गया। सिगरेट समाप्त हो गये थे। दूकान से उन्हों ने सिगरेट का एक पैकेट खरीदा और बुढ़िया के पीछे चल पड़े। पूर्वयोजना के अनुसार वे बुढ़िया से कुछ आगे निकल कर खड़े हो गये और लाला भी जेब से नोट निकाल कर गिनने लगे।

पण्डित ने ऊँची आवाज़ में पूछा, "कितने हैं ?"

"काफ़ी हैं।"

"दे कितने सकते हो ?"

"जितने कहे।" और दोनों उत्सुकता से पास से गुजर रही बुढ़िया के चेहरे को पढ़ने लगे। बुढ़िया आगे बढ़ गई और उस ने पीछे मुड़कर देखा तक नहीं। वे वहीं सड़क के किनारे पत्थरों पर बैठ गये। क्योंकि उस के लौट आने का प्रतीक्षा थी।

थोड़ी देर बाद बुढ़िया अपने ढोरों को हांकती हुई नीचे उतरी। पास आने पर लालाजी ने कुछ हिम्मत से काम लिया।

"माई यहां कुछ मिल जायेगा ?"

"क्या ?"

"यही कोई माल ठाल !"

"क्या जानूँ !" बुढ़िया ने अपनी बोली में उत्तर दिया।

"मेरा मतलब, कोई छोकरी वोकरी है यहां ?....."

बुढ़िया ने गाय के टखने पर ज़ोर से छड़ी दे मारी और लालाजी की ओर उपेक्षा भरी नज़रों से घूरती हुई मुँह में कुछ बड़-बड़ाती ढलान की ओर उतर गई।

इस से अधिक लाला जी कर ही क्या सकते थे। हसरत भरी निगाहों से पण्डित की ओर देखते हुए उन्हों ने सिगरेट निकाल कर सुलगाया और पैकेट पण्डित की ओर बढ़ा दिया। हाथ कमर पर रखते हुए लालाजी हारी हुई सी आवाज में बोले, "पण्डित तुम तो कहते थे लकड़मण्डी डलहौज़ी की छोकरी-मण्डी है...कहते थे पहाड़ में एक सिगरेट से काम बन जाता है।" और उन्हों ने सिगरेट का कश खींच कर धुआं अपने चेहरे के सामने फैला लिया। यह हार अकेले लालाजी की ही नहीं थी। पण्डित का दिल भी बैठ गया था। परन्तु लाला जी को बात पर हाव। होने के लिये पण्डित बोला, " लालाजी जेब में कारतूस होने भर से ही शिकार नहीं मर जाता। निशाना भी कोई चीज है। यह एक कला है, और कला हर किसी की चेरी नहीं," फिर ज़रा रुक कर पण्डित ने सिगरेट का कश खींचा और कहने लगा, "छोड़िये लालाजी, आप तो यूँही मन ख़राब करते हैं। जितनी ख़ूबसूरत बीवी भगवान ने आप को दी है किसी और के पास हो तो वह अप्सराओं को भी जूती बराबर समझे.....चलिये वापस चलें!"

"मेरी बात छोड़ो पण्डित, अपनी कहो, तुम यहां क्या लेने आये थे?" ढलान की ओर क़दम रखते हुए लालाजी ने कहा।

"मेरी ख़ूब कही," अपनी धोती का पल्ला ठीक करते हुए पण्डित कहने लगा, "हमारा तो वही हिसाब है .....किसी ने भूखी भैंस के आगे गली सड़ी भूसी डाल दी थी, भूसी ने शुकर मनाया चलो मेरी गति हुई, भैंस ने भाग्य सराहा कि उस का पेट भर गया। पण्डित की इस बात पर लालाजी की हँसी कलेजे से गले तक आते आते रुकी। पण्डित ने बात सहज भाव से कही थी और एक सीमा तक सचमी थी। लाला जी ने वहीं से बात का रुख बदल दिया

और वह सड़क पर उतरते गये।

सांझ ढलते वे पोस्टऑफ़िस स्क्वेयर में पहुँच गये। स्क्वेयर में जमघट बढ़ता जा रहा था। बकरोटा रोड से उतरते ही सामने स्ट्रीट-लाईट के नीचे कुछ बच्चे किलकारियां भरते हुए उछल कूद कर रहे थे। पण्डित ने चलते चलते उनकी टोह लेनी शुरु की कि शायद उनका लड़का भी वहीं खेल रहा हो। लेकिन वह वहां नहीं था। दिन भर की भटकन के बाद स्क्वेयर में पहुँचने पर वहां का भारी जमघट उन्हें कुछ नया सा मालूम हो रहा था। वे अपनी थकान हजूम की सांसों में खो देना चाहते थे। उस स्क्वेयर में ठण्डी और गर्म सड़क से ठण्डे गर्म चेहरे आ आ कर जमते और छट जाते हैं। वहां तरंगें आती हैं और आपस में अठखेलियां कर के लौट जाती हैं। डलहौज़ी की सांझ का सब से बड़ा आकर्षण ठण्डी-गर्म का चक्कर और यही स्क्वेयर है। उस जगह हर किसी के देखने और देखे जाने का अन्दाज़ अपना अपना होता है। वे दोनों इधर उधर घूम फिर रहे थे और अपने को हजूम में से समझे जाने का प्रयत्न कर रहे थे। थोड़ी देर बाद वे दोनों रेस्तरां की सीढ़ियां चढ़ गए और दो आने की चाय से अपनी सारी थकन दूर करने का प्रयास करने लगे। बातों के तार शिथिल पड़ चुके थे। दोनों सिगरेट के धुएँ से रेस्तरां के नीले प्रकाश को धुँधला रहे थे। चाय की प्याली होंटों से लगी हुई थी कि सामने मोती-टिब्बा की सड़क पर पण्डित को अपनी पत्नी खड़ी दीख पड़ी। तेजी से उस ने चाय के दो घूँट हलक़ से नीचे उतारे और लाला जी से आज्ञा का शिष्टाचार दिखाता हुआ रेस्तरां की सीढ़ियां उतर गया। पण्डित के चले जाने के थोड़ी देर बाद लाला जी भी नीचे उतर कर शेड के आस पास चक्कर काटने लगे। वहां घूमते हुए काली साड़ी में लिपटा उनकी बीवी का संदली बदन लाला जी के मस्तिष्क में लचक खाता रहा। वे भी सोच रहे थे कि अभी उनकी पत्नी राऊंड से आ रहा होगी, वे दोनों एक साथ घर को लौट चलेंगे। फिर उन्होंने निश्चय किया कि आती होगी तो रास्ते में मिल ही जाएगी। सैर के लिये आना प्रायः गर्म

सड़क से ही होता था।

गर्म सड़क के पहले बेंच के पास पहुच कर सामने कान्वेंट स्कूल व गिरजा घर की इमारतें, दिन के मरण की लालिमा की पृष्ठभूमि लिए, छाया-चित्र की भान्ति खड़ी दिखाई दे रही थीं। यह सब देखते हुए उन्हें अपनी बीवी पर खीझ आ रही थी कि वह क्यों अपनी सेहत का ख्याल नहीं रखती। पहाड़ पर आकर खूब घूमना चाहिए वर्ना आने का फ़ायदा ही क्या ? पहाड़ की सांझ घर की चारदीवारी में बिताना हमाक़त है।'

चेयरिंग क्रास के साथ की मार्कीट से लालाजी ने दो अण्डे खरीदे और कचहरी रोड पर उतर गए। बाईं ओर पाँचपुला की खड्ड से धुंध उठ रही थी। ऊपर बकरोटा की बत्तियाँ धुंध से धुंधला चुकी थीं। घर पहुँचे तो मुण्डू बाहर बराम्दे के खम्बे के साथ टेक लगा कर बैठा बीड़ी पी रहा था। बाक़ी सब सुनसान था। लाला जी ने अण्डों का लिफ़ाफ़ा मुण्डू को पकड़ा दिया कि अन्दर रख दे और स्वयं बाहर टहलने लगे। उन्हों ने अन्दर जाते हुए मुण्डू को आवाज़ दे कर बीबीजी के संबन्ध में पूछा। मुण्डू ने बताया कि वह तो काफ़ी देर से सैर को गई हुई हैं। मुण्डू के इस उत्तर से लाला जी को अपने पर बहुत गुस्सा आया कि थोड़ी देर और क्यों न प्रतीक्षा की। दान्त से निचला ओंठ काट कर लाला जी चुप रहे और मन ही मन अनुमान लगाने लगे कि हो सकता है पट्रायन रोड से हो कर गई हो, अथवा किसी सहेली को साथ लेने नीचे गली में चली गई हो, या स्क्वेयर से आगे सतधारा की ओर बढ़ गई हो कि मेल न हो सका। खैर.....जो भी हो, अभी आती होगी।

लालाजी ने कपड़े बदल कर मुण्डू को आवाज़ दी कि वह हाथ पांव धोने के लिये पानी गर्म कर दे। और स्वयं एक सिगरेट सुलगा कर बराम्दे से बाहर खाली जगह में टहलने लगे। वे मुड़ २ कर झुक झुककर सड़क पर आने जाने वालों को टुक देख लेते थे।

अनायास उन का ध्यान कथलगरोड पर चढ़ती आ रही एक मानव

छाया की ओर गया। लालाजी टहलते २ रुक गये। वह छाया बिजली के खम्बे के ज़रा पास पहुँची तो अपनी बीवी को पहचानने में लालाजी को देर न लगी। चाहे उसने आज काली या सफ़ेद नहीं, अपितु फूलदार साड़ी पहन रखी थी और जूड़े की बजाए बाल जाली में सहेजे हुए थे।

वह घर की अन्तिम सीढ़ी पर क़दम रखते हुए लालाजी की ओर देख कर बोली, "आप कब आए हैं?"

"तुम भी अजीब हो, मैं तुम्हें डाकखाना चौंक में देखता रहा, कहीं दिखाई ही नहीं दी। .....आज इधर कहाँ चली गई थी?" लालाजी ने कथलग की ओर ठोड़ी घुमाई।

"आप को बतलाना भूल गई, कमला है ना लाला रामनिवास की बड़ी लड़की, उस ने हम दोनों को आज शाम की चाय कही थी; लेकिन बताना याद ही न रहा....." उस की ज़बान कैंची की तरह चल रही थी!

"तो इतनी देर चाय ही चलती रही?"

"चाय पीकर झट से उठ आना तो अच्छा ही नहीं लगता। उन की कोठी में ही घूमते रहे.....चलो अन्दर चलें, थक गए होंगे।"

उस के रेशमी ब्लाउज पर हाथ फेरते हुए लालाजी बोले, "मुण्डू पानी गर्म कर रहा है, हाथ मुँह धोकर चलते हैं।"

उस ने इधर उधर देख कर लालाजी के बाज़ुओं पर हाथ फेरते हुए पूछा, "आप थके नहीं क्या?"

"नहीं ऐसी तो कोई बात नहीं.....सब ठाक हो जाए गा....."

और लालाजा ने उस की गर्दन पर झुके चमकदार बालों पर हाथ रख दिया। फिर गर्दन के नीचे ब्लाऊज के बीच से झाँक रही गौराई पर अंगुलियाँ फेरते हुए लालाजी सड़क की ओर देखते रहे। जहाँ वे दोनों खड़े थे, वहाँ सितारों की रौशनी के सिवा अन्धेरा था। अन्दर रसोई घर और बड़े कमरे में बत्ती जल रही थी, मगर शीशे पर खाकी कागज लगा होने के कारण प्रकाश बाहर

3752

न आता था। लालाजी ब्लाऊज के नीचे दीख रही उस की नंगी कमर गुदगुदाने लगे कि वह बोल उठी, "देखिए, मुण्डू देख रहा है।"

"वह तो अन्दर पानी गर्म कर रहा है," लालाजी की आवाज गले में गूंज गई। वह उन के साथ सट कर खड़ी रही।

अनायास लालाजी ने अपना हाथ खींच लिया और अलग हट कर कथलग रोड पर चढ़ रहे अपने पड़ोसी नौजवान की ओर घूरने लगे। नौजवान एक हाथ कमर पर रखे, दूसरा आगे पीछे लहराता हुआ चढ़ाई चढ़ता आ रहा था। उस ने बिजली के खम्बे से ज़रा आगे आकर लाला जी के फ्लैट की ओर घूरा। उस की निगाह कुछ क्षण उसी ओर लगी रही, जैसे कुछ जानने का प्रयास कर रही हो। लाला जी की पर्पटियों और कानों में रक्तप्रवाह सायें सायें कर रहा था।

"क्या है?" लालाजी की धर्मपत्नी की आवाज कुछ कांप सी गई। उस ने लालाजी के कन्धे पर हाथ रख दिया और उनके साथ जुड़ कर खड़ी हो गई,

"....." पत्नी का कलेजा धक धक कर रहा था।

लाला जी ने घूम कर उस का चेहरा अपने हाथों में ले लिया। उस क्षण के आवेग में उन्हें उस के खूबसूरत संवरे बाल कुछ बिखरे जान पड़े।

सांकल्प

पहलवान रंगीलाल को अपने गांव रामपुर की पंचायत की सदस्यता प्राप्त करने के लिए विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा था। गांव भर में जितना रसूख उसने कमाया था, चुनाव में काम आया। वैसे भी, जहां तक उस के नाम का सम्बन्ध था, इलाके भर में लोग उसे जानते और मानते थे। दो अठन्ना रोज़ के मजदूर से लेकर बीसियों बल्कि सैंकड़ों घुमाओं ज़मीन के मालिक तक उस की बात रखता था। यदि उसके हाथों किसी का कोई काम संवर न सका हो तो उसने आज दिन तक किसी का कुछ बिगाड़ा भी न था। अगर किसी को कुछ दे सकने की स्थिति उसकी न थी, तो कभी किसी के आगे ज़िंदगी भर में उसने हाथ भी नहीं पसारा। रोज़ी के लिए मज़दूरी करता था, जिस पर कि उसे गहरा स्वाभिमान था। मज़दूरी के नाते प्रायः बोझ ढोने का काम करता या कुंएं खोदता था, जिसपर गुज़र भर हो जाती थी। प्रायः छाती अकड़ा कर चलता। कोई मज़ाक में टोक देता तो उसकी भवें तन जातीं—"किसी के बाप का दिया नहीं खाते, मेहनत की कमाई के बल पर छाती अकड़ती है बच्चू!"

बचपन और जवानी में पिता ने उसे बहुत खुराक खिलाई थी। मां बाप का वह इकलौता बेटा था। माता और पिता दोनों की समस्त अभिलाषाएं उसी पर केन्द्रित थीं। पिता अपने तन के ज़ोर अच्छा कमाई कर लेता था।

पिता की ओर से रंगीलाल को हिदायत थी कि खाओ जितना जी चाहे, काम चाहे करो न करो, पर किसी ऐब को पास मत फड़कने देना। सेहत ही जिंदगी का सब कुछ है। तन्दुरुस्ती बहुत बड़ी चीज है। तन रहते आदमी किसी दुःख की परवाह नहीं करता; सब मुसीबतें सहार जाता है। रंगीलाल पिता की हिदायत को अक्षरशः निभाता, मगर पिता से ही एक चूक हो गई थी। मां की मौत के कुछ महीने बाद पिता ने उसका विवाह कर दिया था। पिता ने सोचा था—इसकी मां तो चाव करती ही चली गई। मेरे दिन अभी हैं, अपनी आंखों से इसका कोई दिन देख जाऊं। यही एक लालसा थी जिस ने पिता को उस का विवाह कर देने पर मजबूर किया। विवाह तो कर दिया, पिता ने अपनी हसरत पूरी कर ली; लेकिन कई साल तक उसने रंगीलाल को पत्नी का मुंह तक नहीं देखने दिया। कभी बात से बात निकल आती तो कहता—"बेटा सारी ज़िंदगी पड़ी है। यही समय है शरीर कमाने का, जितना कमा लो अच्छा है। फिर तो रोज़ी कमाने और सांसारिक धंधे निभाने में ही बीत जाएगी।"

किन्तु पिता के देहान्त के बाद पत्नी को लाना आवश्यक सा हो गया। पिता के हाथ की छाया सिर से उठ गई थी। अब तो अपना तन था और अपनी छाया। सारा दिन मजदूरी करता। लेकिन घर आकर रोटी पकाने को मन न होता। प्रायः पास पड़ोस के किसी घर में रसद देकर एक ही वक्त दोनों जून की रोटी बनवा लेता। पत्नी के आने पर उसे कम से कम यह सुभीता तो दिखाई दिया। रंगीलाल को सुन्दर पत्नी मिली थी और उसे पहलवान पति। खूब निभती रही, जिसके परिणाम स्वरूप दो बेटियों को जन्म मिला और तीसरे बच्चे की तैयारी में ही पत्नी चल बसी। पत्नी की मृत्यु से रंगीलाल को कड़ा आघात पहुँचा। एक तो उसका घर सूना हो गया, दूसरे दो बच्चियों के पितृत्व की ज़िम्मेदारी। अकेला होता तो कोई चिन्ता न थी, लेकिन बच्चियों के कारण उसे सूने घर में बन्धना पड़ा। मजदूरी के लिए यदि कभी गांव से बाहर भी जाना पड़ता तो साँझ ढलते वापस लौट आता। पिता के अतिरिक्त अब वह

बच्चियों की मां भी था। मां के सभी काम उसे करने पड़ते। पर दिन बीतते गए, अपने फक्कड़ स्वभाव के कारण पत्नी की मृत्यु के विषाद को उसने शीघ्र ही दूर हटा फैंका। बच्चियों के सम्बन्ध में उस ने यह सोच लिया था—जो इनकी किस्मत में है, मिलता रहेगा, रब्बीलेख कौन मिटाये ! चिन्ता फ़ज़ूल है।

पंचायत का मैम्बर बन जाने के बाद रंगीलाल की पहलवानी अपने तक ही सीमित नहीं रही थी। हर घर, हर गली की सोच उसकी जबाँ पर होती। यार दोस्तों में बैठकर प्रायः क़समें खाया करता कि उसकी बोटी २ भी गांव के काम आ जाए तो वह क़दम पीछे न हटाए गा। लेकिन यार लोग समझते थे कि भैंस की तरह पली पुसी जो देह उसके अपने काम न आ सकी किसी के काम क्या आयेगी। वास्तव में बात यह थी कि रंगी पहलवान का शरीर देखने में सुडौल और कसरती जान पड़ता था : लेकिन बाप के जीते जी, उसने डण्ड पेले थे, वह भी जान का जंजाल जानकर। लेकिन गांव में किसी ने कभी उसे कुश्ती जीतते नहीं देखा था। तीनेक कुश्तियां गांव से कहीं दूर किन्हीं दंगलों में उसने जीती भी थीं, लेकिन यहां गांव का कोई आदमी कभी मौजूद न था कि उसका रिकार्ड क़ायम रहता। अब दोस्तों मित्रों में वह 'दर्शनी पहलवान' के नाम से याद किया जाता था। पहलवानी की दृष्टि से वह उन में गिना जाने लगा था जो अखाड़े के पास बैठ, लंगोट कसे, तैल मलकर अखाड़े की मिट्टी सिर-शरीर पर मले निठल्ले बैठे रहते हैं और अखाड़े में जोर कर रहे जवानों से अपनी उस्तादी बघारते हैं, तथा चलते समय बाजू टांगें फैला कर चलने के कारण पहलवान मशहूर हो जाते हैं। लेकिन एक बात है, पहलवानी के नुस्खे का वह पूरा २ पालन करता था। अखाड़े की तैल-मिली चिकनी मिट्टी से अपने शरीर को सुघरता देने में वह विश्वास रखता था; मिलने पर बादाम रगड़ कर भी अवश्य पीता। पर जहां तक उसकी बातों का सम्बन्ध था आस पास कोई जानदार पहलवान न बचा होगा जिसे रंगी ने 'गन्दा' न किया हो। जब मित्र मंडली में बैठकर उसकी जबान के धोबी पटके और कलाजंग

चलते तो आस पास बैठे हुए भी वाह वाह कर उठते। उस समय एकदम उसका हाथ अपनी लम्बी और साइकल के हैंडल की तरह घूमी हुई मूछों पर चला जाता। फिर वह तहमद को घुटनों में दबाकर पांव के बल बैठ जाता और उस की चौड़ी चट्टान सी छाती फड़कने लगती। अगर कोई उसे कह ही देता, "पलो-हान, कभी अपना कस्ब तो दिखाओ!" रंगी पहलवान कोहनी कसता हुआ बड़े मायूस लहजे में कहता, "अब तो ये डौले भी ढलक गये हैं, अपने सिर पर ऐश नहीं होती सज्जनां! मां बाप की छांह बड़ी चीज़ है। भाइया था तो उस ने कभी मुझे दूध घी की टोट नहीं आने दी।"

उस दिन पंचायत की विशेष बैठक बुलाई गई थी। साथ के एक गांव के किसी किसान ने दरख्वास्त दी थी। उस किसान की बेटी सौदा लेने रामपुर आई थी। वापस लौटते समय रामपुर के किन्हीं दो छोकरों ने उसका रास्ता रोक लिया और उसके साथ छेड़खानी की। लड़की के चिल्लाने पर एक तो भाग गया। दूसरे ने लड़की के मुँह में मुट्ठी भर मिट्टी ठोंस दी। लड़की ने उस लड़के के पहरावे, क़द-काठ और चेहरे-मोहरे की पहचान दी। लड़की द्वारा बताई गई शनाख़त से लोग लड़के को पहचान गए। गांव भर में यह ख़बर फैल गई थी। वह लड़का रामपुर के एक बड़े ज़मींदार का लड़का था। कोई मामूली आदमी उसके सामने मुँह न करता था। पंचायत में भी बहुमत उस लड़के के पक्ष में था। पहलवान के कथनानुसार जोरावर का सात बीसियों सौ वाली बात थी। सरपंच ने लड़की के पिताको कह दिया कि तफ़्तीश की जायेगी और पता चलने पर मुलज़म को पूरी २ सज़ा मिलेगी। लेकिन रंगी पहलवान बात ताड़ गया था। पंचायत जैसे तैसे मुआमला खीस बीस कर देना चाहती थी। अब तक रंगीलाल पंचायत में बैठा सब कुछ देख सुन रहा था। जब सरपंच ने बात टाल दी तो वह आंख लाल कर उठा और सब पंचों तथा अन्य उपस्थितों को सम्बोधित कर बोला, "बड़ी शर्म की बात है, एक मासूम की इज़्ज़त बरबाद की जाए और हम सब मुँह देखते रह जाएँ। यह मेरे, आपके नहीं, सारे गांव

के माथे कलंक लगा है। कल को यही गुण्डे मेरी लड़की पर हाथ उठायेंगे, परसों आपकी बहू-बेटियों की बारी आयेगी। सांप के बच्चे को जन्मते ही कुचल देना अच्छा है। पंचायत मुआमले को ढांप लेना चाहती है। चाहे मैं अकेला हूँ, पर गांव में यह धांधली नहीं मचने दूंगा। अगर पंचायत ने कुछ न किया तो मैं खुद ऊपर शिकायत कर दूंगा कि पंचायत की शह पर गांव में यह गुण्डागरदी फैल रही है, पंचों के अपने भाई बेटे इस में शरीक हैं, जभी तो यह अंधेर मचा हुआ है। थारो कुछ हुया आनी चाहिए.....फिटे मुँह हमारे इस जीने पर..." रंगीलाल खद्दर के मैले परने से गर्दन पर से पसीना पोंछता हुआ बैठ गया। सारे पंच आंखें फाड़ २ कर उसका मुँह तकने लगे। बाकी बैठे लोगों में रंगीलाल की प्रशंसा में खुसर-फुसर होने लगी। सरपँच ने धीमी सी आवाज़ में पूछा, "अब क्या करना चाहिए!"

"करना क्या है! मुलज़म को आप भी जानते हैं, सब जानते हैं, गाँव की बेहतरी के लिए जो क़दम उठाना चाहिए उठाइये!" रंगीलाल ने कहा।

दरी के एक कोने पर बैठा हुआ एक पंच बोला, "पलोहान, तुम्हीं क्यों नहीं बता देते उसका नाम.....?"

"चौधरी, मैं तो बताऊँगा ही! मुझे किसी का डर नहीं। मैं तो आप लोगों की हिम्मत देख रहा हूँ।"

सरपंच स्वंय मुलज़म का नाम ले कर समूचे घराने से दुश्मनी मोल नहीं लेना चाहता था। उसने रंगीलाल को कहा कि चौकीदार को भेज कर मुलज़म को बुला लिया जाये। रंगीलाल ने चौकीदार को एक ओर ले जा कर मुलज़म का नाम बताया और उसे कहा कि वह उसे कह दे—'मुआमला बहुत बिगड़ गया है, खैरीयत इसी में है कि पंचायत में आ कर पेश हो जाओ; वरना लड़की का बाप मुआमला पोलीस में दे देना चाहता है। और लड़की तुम्हें पहचानती है।'

मुलज़म आ गया। थोड़ी देर की पूछ-ताछ और पंचों की आपसी

झड़प्पों के उपरान्त सरपंच ने अपना फैसला सुना दिया "बीस जूतियां, और इसका मुँह काला कर के गधे पर चढ़ा कर गांव भर में घुमाया जाये।" पंचों में पुनः खलबली मची। मुलज़म ख़ानदानी लड़का था। कुछ पंचों ने साफ़ २ कह दिया कि वे अपने सामने उस ख़ानदान की इतनी बेइज्ज़ती नहीं होने दें गे। लेकिन फ़ैसला सरपंच ने सुनाया था और सरपंच भी उसी ख़ानदान में से था। उसने कहा कि मुलज़म की यह करतूत उसके ख़ानदान के मुँह पर बदनुमा दाग़ है जो कभी नहीं मिट सकता, लेकिन सज़ा उसे पूरी २ मिलनी चाहिए। बाद में रंगीलाल और लड़की के बाप की रज़ामन्दी से दण्ड का दूसरा भाग मन्सूख कर दिया गया। बीस जूतियों की सज़ा बराबर बनी रही। अब प्रश्न था कि मुलज़म को जूतियाँ लगाये कौन ? जो लगाता उसकी ख़ैर न थी। यह काम सरपंच को स्वंय निभाना पड़ा।

उस रोज़ गाँव भर की ज़बान पर रंगी पहलवान की इन्साफ़-पसन्दी की प्रशंसा थी। घर २ उसकी हिम्मत की दाद दी जा रही थी। और पहलवान अपने टूटे फूटे घर में चरमराती चारपाई पर बैठा दो तीन यार दोस्तों को 'हीर' गा कर सुना रहा था—

.....राह जांवदियां देखियां दो जनियां
पट्ठ दाने भुनावन चल्लियां नें,
इक पट्ठ गिल्ला, दूजे बालन सिल्ला
तीजे आशक़ां गलियां मलियां नें,
फुल्ले फुल्ले ते चुन लये आशक़ां नें
रोड़ लै घरां नू चल्लियां नें,
वारस-शाह मियां निगाह मार लेवीं
चिट्टी पग नूं दाग़ ला चल्लियां नें.....

इस के बाद उसने 'मिर्ज़ा साहवां,' 'माहिया', 'सोहनी महीवाल' तथा 'क़िस्सा पूर्ण-भक्त' में से भी दो २ एक २ टप्पे सुनाये।

एक दोस्त ने उठ कर पहलवान के चूल्हे में आग जलाकर चिलम तैय्यार की और टोपी हुक्के पर रख कर गुड़काने लगा। फिर खांसता हुआ बोला, "पलोहान, हमारे गांव में एक बन्दा तैयार हुआ है।" रंगी पहलवान खाली आंखों से उसकी ओर देखने लगा। वह दोस्त फिर बोला,

"टोटा फसक्लास है....."

पहलवान ने पूर्ण-भक्त का किस्सा उठाकर एक ओर रख दिया और दूसरी चारपाई के नीचे पड़ी जूती की ओर हाथ ले जा कर बोला," तुम्हारी भी जूतियां खाने की सलाह तो नहीं है...मार २ कर सिर मुँह एक कर दूँगा अगर यहां आकर कभी ऐसी बात की तो।....."

पहलवान के उस दोस्त की सलाह जूतियां खाने की नहीं थी और वह अपनी बात भी कह लेना चाहता था—"तेरी कसम पलोहान, चलता माल है।" धीरे २ पहलवान के तेवर सुलझने लगे। उसके पंच ने सोचा—गांव का अच्छी बुरी खबरें मालूम होनी चाहिये। उसने पूछा, "कौन?"

"जा नहीं बताता...पंच होगे तो घर होगे, हम क्या जानते हैं?"

"नहीं सोहनयां, वह तो मैंने यूँही मजाक में कहा था...बता तो सही कौन है?"

उसने आवाज को जरा दबा कर मुँह पहलवान के पास ले जाते हुए कहा,

"वही शाहनी, ईमान से चलता माल है..."

"ऊं...हूँ...मैं नहीं मानता...नहीं यार!"

"तेरी कसम पलोहान!"

उसके बहुत कसमें खाने पर भी पहलवान को ईमान नहीं आया। लेकिन हौले २ उसका दिमाग मानने लगा—हो भी सकता है...चाल ढाल से ही वह कुछ ऐसी दिखाई देती है, उसके लच्छन ठीक नहीं, गांव में इतना बन ठन कर रहने की क्या जरूरत है। रोज ओंठों पर दातुन मलना, नये से नये पेटी-कोट, भाँति २ की चोली, एक घर से दूसरे घर में [illegible]...[illegible]

मतलब क्या है ? पति को देखो तो वह बेचारा सारा दिन इस गांव से उस गाँव में फेरी लगाकर कपड़ा बेच रोज़ी कमाने की धुन में रहता है और इसके बनाव सिंगार नहीं ठहरते—बात कुछ २ पहलवान की समझ में आने लगी।

उसके बाद शाहनी पहलवान के ख्यालों में कई बार आई। हर बार उसे लगता जैसे कोई उसके दिमाग़ के किसी बन्द द्वार की सांकल खनका रहा है। ज्यों २ पहलवान शाहनी के संबन्ध में सोचता सांकल की खनकाहट बढ़ती जाती थी। फिर शाहनी का वह धुंधला सा चेहरा उसके दिमाग़ से ढलक कर दिल पर मण्डराने लगा। अब अगर पहलवान कहीं शाहनी को आती देख लेता तो उसकी टांगों में मीठी सी कंपकपी शुरु हो जाती थी। वह तेज़ कदमों से गर्दन तिरछी किए उसके पास से गुज़र जाता।

बीसेक दिन उपरान्त पहलवान को पंचायत के किसी काम से ज़िला जाना पड़ा। रामपुर से बाहर निकलते ही रास्ते में एक नदी पड़ती थी। नदी पर पहुंचा तो उसे उस पार अचानक शाहनी आती दिखाई दी। शाहनी उस किनारे बैठकर अपनी गठरी ठीक से बांधने लगी। पहलवान जल्दी से नदी पार कर गया। जूती किनारे पर फेंक बात को ज़रा सहेज कर उसने शाहनी से कहा,

"शाहनी जी लाइये यह गठरी मैं पार पहुंचा दूं ! "

"नहीं भाई ठीक है, कौन सी भारी है .."गांठ देती हुई शाहनी बोली। शाहनी को ज़रा नर्म देख पहलवान ने फिर कहा,

"नहीं नहीं शाहनी जी, आप भला क्यों तक़लीफ करेंगी, मैं जो हूं ! "

"नहीं, कोई बात नहीं, तक़लीफ़ काहे की है। " और शाहनी गठरी उठाकर पानी में उतर गई।

नदी में पानी थोड़ा था। अतः घुटनों से ज़रा ऊपर तक ही वस्त्र उठाना पड़ता था। शाहनी एक हाथ से अपनी उनाबी किनारे वाली धोती ऊपर उठाये थी और दूसरे हाथ से कन्धे पर गठरी सम्भाले नदी पार कर रही थी। पहलवान जूती पहनता हुआ नदी के निर्मल पानी में झिलमिलाती शाहनी की स्वस्थ

और गोरी २ पिण्डलियां देख रहा था। फिर ज़िला तक रास्ते में पहलवान ने कई बार शाहनी के सम्बन्ध में सोचा। उसकी गोरी पिण्डलियां उसकी आंखों के सामने चरमराती रहीं, वायल के सफेद ब्लाउज़ के बीच से उभरे सीने उस दिमाग़ को चुभन देते रहे और उस के दिलोदिमाग़ की साँकलें झनझनाती रहीं।

इसी तरह लगभग एक महीना और बीत गया। उस बीच पहलवान के उस दोस्त ने शाहनी के संबन्ध में कई इधर उधर की ऊटपटांग बातें सुनाई। जिसके परिणाम स्वरूप उसे शाहनी उस दिशा में और भी कमज़ोर जान पड़ने लगी और उसके इरादे नेक होते गये।

एक सुबह शाहनी मुखिया के बाग़ से चम्बेली के फूल लेकर आ रही थी कि पहलवान ने चलते २ उसे कह ही दिया,

"शाहनी जी हमारा भी ध्यान रखा करें ना!"

शाहनी रुक गयी, "क्या मतलब...?"

"कुछ नहीं, मैं ने कहा हम भी आप के आसरे हैं....." पहलवान भी खड़ा हो गया था लेकिन उसकी टांगे कांप रहीं थी। शाहनी के बिगड़े तेवर देख कर उसका कम्पन और बढ़ गया।

"कल-मुँहें, मां को कहते एक बहन भी जन छोड़ती। बेहया..... मूँछें उखाड़ बत्ती बना दूँगी, बड़ा मान होगा मिम्बरी का....."

आस पास सुनने वाला कोई नहीं था। दोनों की रह गई। इस घटना से पहलवान की कीर्ति में कोई अन्तर नहीं आया, क्योंकि उन दोनों के अतिरिक्त कोई जानता नहीं था। इस दिशा में दोनों ने बड़ी समझदारी का सबूत दिया। फिर तो जब शाहनी दिखाई देती, पहलवान नज़र बचा जाता था।

इस घटना के उपरान्त पहलवान सोचने लगा था—इस से तो अच्छा है कि घर बसा लूँ। लेकिन फिर ख्याल आता—घर बसे कैसे? किस के साथ? गृहस्थी जुटा पाने के लिये रुपया चाहिए। जो भी मिलेगी, पांच सौ से कम

क्या मांगे गी। इतनी बड़ी रक़म कहां से लाऊँगा ? ...चलो क्या हुआ इतनी देर सुख भोग कर देख लिया है। यह तो ऐसी चीज़ है कि जी भरता ही नहीं, कुछ संयम भी होना चाहिए—

उस दिन दुपहर को वह अपने घर में पड़ा सो रहा था। दोनों बच्चियां गली के किसी घर में खेलने गई हुई थीं। गर्मी काफी थी और वह करवटें बदल २ कर दुपहर की तपश से लड़ रहा था कि दरवाज़े पर दस्तक मिली। पहलवान को सोते हुये उठाने वाला व्यक्ति बहुत बुरा लगता था लेकिन, उसी के अनुसार, दरवाज़े पर आये को टाला भी नहीं जा सकता। वह झल्लाता हुआ उठा और दरवाज़े की ओर बढ़ा। दरवाज़े की दरजों के बीच से उसने झांक कर देखा। दरवाज़ा खोला और उसका लहज़ा एक दम बदल गया,

"आइये आइये, आज तो कीड़ी के घर नारायण आये हैं...इधर का रास्ता कैसे याद आ गया ?....."

बिना उत्तर पाये किवाड़ बन्द कर वह अन्दर को चला आया। उसके पीछे एक बुज़ुर्ग और उनके साथ अधेड़ उम्र का एक व्यक्ति अन्दर आये। पहलवान ने चारपाई झाड़ कर उन्हें ठीक से बैठाया। पानी-धानी के लिए पूछा। फिर शक्कर का पानी बना कर उन्हें पिलाया।

थोड़ी देर वे इधर उधर की बातें करते रहे। समीप दूर के परिचितों की कुशल क्षेम पूछते रहे। सारी बातचीत के दौरान में अधेड़ उम्र का वह व्यक्ति चुप रहा। उसे किसी बात से भी सरोकार न था। यूँही उस बुज़ुर्ग के साथ चला आया था। सहसा बातपलट कर परने से मुँह पर से पसीने की बूँदें पोंछते हुए वे बुज़ुर्ग बोले,

"अच्छा पलोहान जी, हम जिस काम से आये हैं, वह बात पक्की कर लें पहले ?"

"कहिये, किसी काम आ सकूँ तो।" पहलवान बज़ुर्ग की आंखों में

देखता हुआ बोला।

"सच्ची बात तो यह है पलोहान जी कि हम आप को इस हालत में नहीं देख सकते। जैसे भी हो आप को इन्तजाम करना ही होगा," फिर जरा रुक कर शुरु हुए, "अपने लिए नहीं तो इन मासूम बच्चियों के लिये ही सही। जैसे भी हो घर बसा लीजिये।"

किसी परोक्ष आशा से पहलवान की गालें थिरकने लगीं। अपनी आवाज को जरा सम्भाल कर बोला, "नहीं नहीं, वैसे तो मैं आप के चरणों का दास हूँ। लेकिन आप मुझे इस जंजाल में फिर न डालिये। काफ़ी निभा चुका हूँ.....।"

"वाह पलोहान जी, यह क्या बात की, अभी उम्र ही क्या है। इस तरह क्यों अपनी काया को सता रहे हैं? बन्दा हम ने देख लिया है, सिर्फ आपकी हां चाहिये..." बातों की आंच से पहलवान कुछ पिघल सा गया। हल्की सी हंसी की हवा छोड़ता हुआ बोला,

"देखिये, आप मेरे पिता बराबर है। बात यह है कि पता नहीं होता कैसा इन्सान पल्ले पड़ता है। ऐसा न हो कि जैसी बीत रही है, इस से भी गन्दी हो जाये। फिर अपनी हैसीय्यत भी तो कुछ नहीं....."

बुजुर्ग बीच में बात काट कर बोले, "कैसी बातें करते हैं आप। वह तो हाथों की मैल है.....।"

पहलवान विजय गर्वित सा हो गया। छाती के बालों पर हाथ फेरने लगा, "अच्छा जैसी आप की इच्छा कीजिये, मगर बन्दे का पता भेज दें जरा कैसा है। मेरा मतलब घराने और आपे का अच्छा होना चाहिये..."

"इस बात का आप यकीन रखें, बन्दा हमारा खूब देखा भाला है। सोलह आने ठीक होगा।" और सफ़ेद दाढ़ी वाले बुजुर्ग अपनी धोती का पल्ला मरालने लगे। फिर थोड़ी देर दोनों ओर से खामोशी बनी रही। अधेड़ अवस्था वाले व्यक्ति की ओर सूनी दृष्टि से देखते हुए बुजुर्ग उभरी हुई नाड़ियों से

भरी टाँगे नीचे कर जूती पहनते हुए उठने को हुए। पहलवान ने उन्हें रात वहीं रह जाने का निमंत्रण दिया। बुजुर्ग ने पगड़ी ठीक करते २ उसका धन्यवाद किया और घर पर ज़रूरी काम का होना बताया।

पगड़ी की सलवटों पर हाथ फेरते हुए वे बुजुर्ग धीमी सी आवाज़ में बोले, "एक बात और कहनी थी पलोहान जी... "

"हुक्म !..." पहलवान बूढ़ी और झुरीदार आंखों में देखने लगा। झुरियां ज़रा हिलीं और बुज़ुर्ग ज़रा रुकते हुए बोले,

"चिन्ता तो आपको भी होगी, लेकिन बच्चियां अभी छोटी हैं; अभी कोई बड़ी बात भी नहीं चिन्ता करने की। वर अच्छे मिल जायेंगे। आप इस लिए उनकी बात अभी पक्की कर छोड़ें, फिर तो आपका रिश्ता कल ही ले आऊं... " इस बात के होते २ पहलवान की आंखों में सुर्ख डोरे लहरा उठे। उसके होंट कांपने लगे। चेहरे पर जैसे आहरन की चोट पड़ी हो, जैसे उसके अन्तर में किसी ने सुलगती चिंगारी फंक दी हो। अजीब हालत हो रही थी उसकी। फिर भी वह अपने को आपे में रखता हुआ उन से बोला,

"आप यहां से चले जाइये...चले जाइये मैं कहता हूँ, वर्ना कुछ और हो जायेगा। मेरी बच्चियों का सौदा करने आये हैं आप ? मैं बूचड़ नहीं, इन्सान हूँ। अपने थोड़े से सुख के लिये अपनी नन्हीं बच्चियों को दोज़ख में धकेल दूँ ? .. हया आनी चाहिये थी आपको ऐसी बात मुंह से निकालते..." बुजुर्ग का साथी हैरानी से उन दोनों की ओर देखने लगा। पहलवान को लगा जैसे उसके भेजे में खनकती सांकल छत से निस्पन्द लटक गई हो। पहलवान ने बुजुर्ग को बाजू से पकड़कर दरवाजे की ओर धकेला।

"पलोहान जी मेरा मतलब ..."बुजुर्ग ने अपना मन्तव्य समझाना चाहा।

"मैं कहता हूँ निकल जाओ यहां से... "

वे दोनों दरवाजे से बाहर हो गये, पहलवान की आँखों में खून के आंसू झलक रहे थे। उसकी चौड़ी पेशानी की हर लकीर थिरक रही थी।

"बेटी-फ़रोश कहीं का..." और पहलवान ने भीतर सांकल लगा ली।

सौदा

आमों पर बौर आया ही था कि सौदागरों की निगाहें पत्ते २ पर तरने लगीं। जगह २ सौदे हो रहे थे। सौदागर और उन के दलाल कन्धों पर अमृतसरी और बनारसी ढंग के लाल हरे पटके लटकाए इधर से उधर, इस बाग़ से उस बाग़ में घूम फिर कर फल और उसके मोल का अनुमान लगा रहे थे। दिमाग़ कुछ २ भारी थे। उनकी चाल में भी उन दिनों अन्तर पड़ गया था। दिखाई देता था जैसे उन्हें आमों का बुखार चढ़ा हो। वैसे, साधारणत: वह स्थिति बुखार की अवस्था से कम भी न थी। जब कोई सौदागर किसी सौदे की ताक में हो और उसे सूचना दे दी जाए कि वह सौदा उसके अन्दाज़े से कुछ सस्ता ही चुक गया है, तो उसे जो पीड़ा होगी, वह मलेरिया के टीके से किसी क़दर कम नहीं कही जा सकती। उसके मुंह का ज़ायका ही कुछ बदल जायेगा, जैसे अभी २ कोनीन हलक़ से नीचे उतार कर दूध पिया हो।

हमारे गांव में जितने सौदे होते हैं, प्राय: मुखिया की हवेली में बड़ के उस विशाल वृक्ष की छाया में होते हैं। वैसे भी वह हवेली आसपास के इलाक़े में सुविख्यात है। दूर दूर तक लोग उस हवेली को जानते और मानते हैं। कई बार वह हवेली सुदूर प्रदेशों से चले मुसाफ़िरों और बारातों की रैन भर का बसेरा बनी है। गर्मियों में बड़वृक्ष के नीचे और सर्दियों में हवेली के खुले आंगन में

किसानों और मज़दूरों की टोलियाँ जमी रहती हैं। महफ़ल पर महफ़ल रंग पकड़ती जाती है। गांव की सारी राजनीति, पंचायत की गतिविधि तथा गांव की सब अच्छी बुरी खबरें वहां प्राय: विचाराधीन होती हैं। किसने आज किस के खेत से कितने गन्ने तोड़े, किस ने अपने ढोर खुले छोड़ कर अमुक की इतनी फ़सल उजाड़ दी, अमुक ने अमुक के खलिहान से इतने गट्ठे चुरा लिए; इन सब ख़बरों के मुख़बर वहां अपनी धाक जमाते हैं। नहीं टिकता तो वहां गन्ने तोड़ने वाला, फ़सल उजाड़ने वाला और खलिहान चोर ही नहीं टिकता, टिकने की हिम्मत ही नहीं रखता। उस के लिए तो हवेली थाने से भी अधिक भयानक है। वहां वकील भी मिल सकते हैं, जज भी मिल सकते हैं, दिमाग़ी अय्याश और 'जीनियस' की जगह भी वहीं है। नहीं होते तो वहां अपराधी नहीं होते। क्योंकि उस महफ़ल म बैठकर कोई भी अपनेको अपराधी मानने को तैयार नहीं होता। घड़ी भर सुस्ता लेने की चाहत रखने वाले भी घर से ही चारपाई उठाकर वहां आ जमते हैं। रौनक़ की रौनक़, आराम का आराम। हवेली राजमार्ग के ऐन किनारे पर होने के कारण दोपहर की लू और तपश के मारे मुसाफ़िर भी ठंडी छांव देख कर दम भर सांस लेने को वहां रुक जाते हैं।

उस दिन हवेली में काफ़ी जमघट था। शहर से आमों के ख़रीदार आये हुए थे। सौदे पर सौदा हो रहा था। मैं भी अपने कमरे के गुम वातावरण से उकताकर हवेली चला गया था। इस बार पंजाब भर में आम का फल कम था, जिसके परिणाम स्वरूप सौदा काफ़ी चढ़ती पर था। मेरे पहुँचने से पहले दो बाग़ और पांच फुटकल बूटे आम के बिक चुके थे। तीसरे सौदे पर बहस खूब गर्मागरम थी। चौधरी रामदास अड़ा हुआ था कि वह दरिया वाले खेत के अपने तीनों बूटे पांच सौ से कम को नहीं जाने देगा, और दो मन आम जिन्स के रूप में घर के लिए भी रखेगा। सौदागर ने उसका हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर अंगुलियों के पोर दबाते हुए समझाया कि साढे तीन सौ ठीक हैं। चौधरी ने पगड़ी ठीक करते हुए बाईं टाँग चारपाई के नीचे लटकाई कि सौदागर ने

कन्धे पर हाथ रखते हुए उसे ठहर तो जाने का निवेदन किया —

"समां बहुत मन्दा है चौधरी, मण्डी में माल उठाने को कोई तैयार नहीं होता। फिर यहां से मण्डी तक माल पहुंचाना तुम खुद देख लो कितना जोखिम का काम है।" उस अमृतसरी लाला के इस तर्क से वह अनभिज्ञ नहीं था। जोखिम से बचने के लिए ही तो माल गाँव में बेच लिया जाता है। वर्ना उसे क्या मण्डी का रास्ता नहीं आता। बात को सहेजकर चौधरी बोला, "लाला, जी, सस्ते समय में मेरे बूटों के आम कभी आठ आने सेर से कम नहीं बिके। सौग़ात के तौर पर लोग ये आम ले जाते हैं। इस बार तो आसपास कहीं आम दिखाई ही नहीं देता।" वस्तुतः बात भी यही थी। चौधरी रामदास के वे तीन पेड़ ज़ायक़ा के लिहाज़ से इलाक़ा भर में मशहूर हैं। और वह लाला किसी हालत में भी सौदा हाथ से नहीं जाने देना चाहता था। काफ़ी तर्क वितर्क के उपरान्त सौदा सवा चार सौ पर ठहर गया। चौधरी खुश था क्योंकि पिछली बार फल बहुत होने पर भी तीन सौ ही हाथ लगे थे। अब की बार तो उस ने आशा भी बहुत कम की लगाई थी। यह तो पहले हो चुके सौदों से उसे पता चला था कि आम इस बार बहुत चढ़ती पर हैं। बात यह है कि उस के आम एक साल खूब फलते हैं दूसरे साल कम। रसीद लिख दी गई ताकि सनद रहे, जिसके अधीन पचास रुपये पेशगी के रूप में चौधरी ने ले लिए।

ख़रीदार रसीद जेब में डालकर चौधरी तथा अन्य परिचितों को राम-राम कहता हुआ वहां से चल दिया। जमघट भी छटने लगा था। मैं ने उठकर एक छोटी सी चारपाई तलाश की और एक ओर घनेरी छाँव ढूंढकर जा लेटा। अभी नींद को आंखों में समा लेने में प्रयत्नशील था कि प्रौढ़ सी आवाज़ सुनाई दी—'चौधरी जी पैरींपये (चरण बन्दना)'। मैं ने उधर पासा पलट कर देखा तो एक उम्र को पहुंचा हुआ व्यक्ति चौधरी रामदास की ओर लपक रहा था। चौधरी ने हाथ से सिरहाने की ओर इशारा करते हुए उसे बैठ जाने का कहा।

आगन्तुक ने जूती नीचे उतारी और धोती सम्भालता हुआ चारपाई पर

आराम से बैठ गया। उसकी सफ़ेद मूंछों का अग्रभाग पीला हो चुका था। अन्दर को धंसी हुई गालें शायद कह रही थीं कि एक दिन हमारा उभार भी देखे ही बनता था। आंखों के आसपास की झुरियां प्रतीक थीं उस अनुभव की जो जिंदगी के थपेड़े खाए और खट्टे मीठे स्वाद चखे बिना प्राप्त नहीं होता। पगड़ी को उतार कर उसने एक ओर रख दिया। सिर पूरी तरह सफ़ेद था। जिस पर उस ने चोटी से लेकर माथे और बालों की सन्धि-रेखा तक उस्तरे से नाली बनवाई हुई थी ताकि दिमाग़ को हवा लगती रहे। सिर पर बड़े प्यार से हाथ फेरता हुआ चौधरी से बोला,

"और कहिए क्या हाल चाल है!"

"दया है भगवान की। घर कहिए बाल बच्चे राज़ी हैं ना?"

"हाँ सब राजीख़ुशी हैं, उसका प्रताप है।" पीली मूँछें हिलीं।

"पानी धानी की सुनाइये!"

"बस बस, कोई तृष्णा नहीं है।" नाहीं का हाथ हवा में फहराता हुआ वह बोला।

फिर भी चौधरी ने वहां खेल रहे एक छोकरे को बुलाकर कहा कि वह उसके घर जाकर लाजो से पानी बनाने के लिए कह आये। इसी रेलपेल में मेरी आंख लग गई। थोड़ी देर ही सोया था; किसी ने आकर मुझे हिलाया कि तुम पर धूप आ रही है। मैं ने उठकर चारपाई छाँव तले सरका ली। उनीन्दी आंखों ने देखा वे दोनों किसी गहरी चर्चा में पड़े थे। अब दोपहर ढल चुकी थी। हवा भी क़दरे ठण्डी बह रही थी। अब तो नींद ने बुरी तरह आ दबाया। अगर कोई आकर साथ वाला खरास न जोतता और बैलों की टुनटुनाती घंटियां और खरास की घर्रघर्र मुझे उठने पर मजबूर न कर देती तो कौन जाने कब नींद खुलती। जागा तो देखा कि धूप सुर्ख होती जा रही है। साए लम्बे हो चुके हैं। मैं जल्दी में आँखें मलता हुआ उठा और जूती घसीटता हुआ घर को चल दिया। हवेली से बाहर निकलते ही मेरा दोस्त नन्द मुझे मिला। उस ने

बताया कि आज लाजो की दोहरी कड़माई हो गई है। उसे अपने घर से पता चला था। उसका पिता उस की माँ से सरसरी तौर पर बात कर रहा था। उसने मुझे इस लिए बताया क्योंकि वह जानता था कि लाजो का हमारे घर बहुत आना-जाना है। वह कभी-कबार मुझ से आकर पढ़ भी जाया करती थी। माँ की मृत्यु हो जाने के कारण पिता ने तीसरे दर्जे से ही उसे स्कूल से उठा लिया था। एक बार उस ने मेरे नाम का राड़ा भी बोया था (राड़े बोना पंजाब की ग्रामीण बालाओं का एक त्योहार है जो वे बड़े चाव और धूमधाम से मनाती हैं)। जिसके इवज़ में मैंने उसे एक रुपया दिया था। नन्द ने जो दास्तां सुनाई, उससे यही आवाज़ आती थी कि लाजो उस पीली मूँछों वाले बूढ़े के बेटे से ब्याह दी जाए गी, जिसके बदले में वह बूढ़ा अपनी बेटी का विवाह चौधरी रामदास से कर देगा। मैं ने नन्द से पूछा, "चौधरी रामदास को दोहरी करने की क्या ज़रूरत है? उसे तो वैसे भी मिल सकती है। अच्छा बसते घर का है!" तो नन्द ने उत्तर दिया था, "अरे यार, ज़मीन थी सो दरिया बहा कर ले गया। अब तो वही आमों वाला खेत और उसके आगे दो खत बाक़ी हैं। या यह गांव के साथ है कोई एक डेढ़ घुमाओं। अब तो मुश्किल से गुज़ारा है। वर्ना दोहरी ब्याहने को किस का जी चाहता है। जिसके साथ लाजो की सगाई हुई है उसे मैं जानता हूँ। कोई छः महीने हुए उसकी पहली औरत मर गई थी। लम्बी बीमारी थी लोग कहते हैं कि दिक़ था। वैसे भई रामदास बेचारा है भी सच्चा। अगर लाजो को इकहरी ब्याह दे तो बाद में घर संभालना मुश्किल है। उसे तो रोटी तक की मुसीबत हो जाए। पांच साल हुए हैं लाजो की मां को मरे, सारा काम काज लाजो ने ही संभाला है।"

यहां से हटकर नन्द बाहर खेतों की ओर चला गया। निश्चित हुआ था कि मैं घर हो आऊं, नन्द को खेत से लेकर दरिया की ओर घूमने जाया जाएगा। मैं गली का मोड़ मुड़ा ही था कि किसी ने पुकारा—"भाजी!" मैंने मुड़कर देखा—लाजो अपने दरवाज़े में खड़ी मेरी ओर निहार रही थी। मैं पास

गया तो चूड़ियां कलाई से ऊपर चढ़ा कर आटे से भरे हाथ झाड़ती हुई बोली,

"आप हवेली से आ रहे हैं ?"

"हां, हवेली से आ रहा हूँ।"

"बापू वहीं हैं ना ?" अपनी आदत के अनुसार आँखो को ज़रा भींच कर लाजो ने पूछा।

"पहले तो वहीं बैठे थे, अब नहीं दिखाई दिए। उनके साथ कोई महमान था शायद !"

"हां, यही पता करना था कि उनकी भी रोटी बनानी है या नहीं !" बालों को कलाई से सहेजती हुई लाजो बोली। मैं ने अनायास दरवाजे से अन्दर देखा तो सामने दालान में एक परात में आटा पड़ा हुआ था और एक ओर पानी का बरतन तथा छाननी टिकी हुई थी। चलने को हुआ तो लाजो को कुछ और याद आ गया, "सच हां, वह बताइए, सुना आज हमारे दरिया वाले खेत के आमों का सौदा हो रहा था। कितने को बिके ? जिन्स कितनी रखी है ?"

"सवा चार सौ, जिन्स दो मन रखी है।"

"इस बार तो चंगा रहा है सौदा।" लाजो के चेहरे पर गुलाब खिल गया था।

"हाँ हां, क्यों नहीं !" और कहता भी तो क्या ?...

"अच्छा लाजो चलता हूँ !"

"चंगा... !" और लाजो मुस्कराती हुई आंखें भींचकर अन्दर चली गई। उस समय उसकी मासूम चंचल आखों में मुझे सौदे का मोल और चंगापन दिखाई दे गया, जिसे वह अभी जान भी न पाई थी। उस पर तो और आने को था कि सौदा चुक गया।

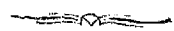

बरखा

गर्मी का आरम्भ, मई की तपती दुपहर, क्षितिज पर नाच रही काली घटायें, रेलवे-लाईन के दोनों ओर काई के सूखे बबूल, पंखों की गूँज, गाड़ी उत्तर की ओर दौड़ती जा रही थी .....

उस डिब्बे में भीड़ अधिक न थी। उस डिब्बे की क्या बात ! सारी गाड़ी का यही हाल था। उस डिब्बे में एक सीट पर कालेज की दो छात्राएँ बैठी हुई थीं। उनके ऊपर के तख्ते पर उनके दो ट्रंक, दो बिस्तर, एक अटैची, एक सितार-बक्स और एक कश्मीरी टोकरी पड़ी थी, जिसमें दो एक किताबें, एकाध पत्रिका और तौलिया आदि पड़ा था। दोनों ने घुटनों से काफ़ी नीचे तक ढलकती कमीज़ें और टखनों से ऊँची सलवारें पहन रखी थीं। कमीज़ों का रंग अलग २ मगर फीका था। सलवारें दोनों की सफ़ेद थीं। चुनरिया एक की सफ़ेद और दूसरी की नीम हरी जार्जेट की थी। शरीर की दोनों छरहरी थीं; लेकिन एक का चेहरा भरा हुआ और लालिमा पकड़े था, दूसरी के चेहरे पर गन्दमी रंग के साथ पीलेपन का सम्मिश्रण था। भरे हुए चेहरे वाली ने ढीली बन्धी दोनों चोटियों को आधे से लाल रिबन से सहेजा हुआ था। दूसरी ने दोनों चोटियों की दो पींगें बनाकर काले रिबन से बांध रखी थीं। लाल रिबन वाली ने दाईं ओर से मांग निकाली हुई थी, जो उसके स्वस्थ चेहरे को और भी चुस्त बना रही थी। काले रिबन वाली ने बाईं ओर से मांग निकाल कर बालों को माथे की ओर झुकाया हुआ था। उसके गन्दमी-पीले माथे पर काले चमकदार बालों

का वह झुकाव बहुत प्यारा लगता था। हवा की सरसराहट से रिबन फहरा रहे थे। वे दोनों यूनिवर्सिटी की परीक्षा दे कर घर लौट रही थीं।

उनकी पीठ वाली सीट पर कुछ लड़के ऊधम मचा रहे थे। वे रास्ते के एक स्टेशन से उस डिब्बे में चढ़े थे। वे उन युवतियों को देखकर ही उस डिब्बे में आए थे। प्लैटफ़ार्म पर घूमकर पहले उन्हों ने सारी गाड़ी का निरीक्षण किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें वही डिब्बा पसन्द आया। क्योंकि उस डिब्बे में उन्हें 'कुछ' मिल गया था। वे भी संभवतः कालेज के विद्यार्थी ही थे। अंग्रेज़ी कविता की पंक्तियां तथा प्रसिद्ध लेखकों एवं दार्शनिकों की उक्तियां ऊँचे २ बोल कर उन युवतियों का ध्यान आकर्षित करना चाह रहे थे। लेकिन वे पंक्तियां और उक्तियां गाड़ी के चलन और पंखों की गूँज में ही कांपती रह जाती थीं। युवतियां कम्पार्टमेंट के अन्त की सीट पर थीं और उनकी ओर टॉयलेट नहीं पड़ता था, वर्ना उन युवकों को थोड़ी २ देर बाद कष्ट महसूस होने लगता।

युवतियों की दाईं ओर खिड़की के साथ वाली अकेली सीट पर अधेड़ अवस्था का एक व्यक्ति खद्दर का तहमद तथा कमीज़ पहने खिड़की से बाहर पीछे को दौड़ रहे वृक्षों तथा काई के बबूलों को देख रहा था। सिर पर उसने मैली कुचैली पगड़ी पहन रखी थी। पगड़ी थी तो सफ़ेद लेकिन मैल ने उसमें काफ़ी गाढ़ा रंग डाल दिया था। उसकी दाढ़ी कई दिनों की बढ़ी हुई थी, लेकिन मूँछें लम्बी होने के कारण चेहरे पर बुरी नहीं लग रही थी। एकाएक उसने ऊपर से एक मैली सी गठरी उतारी और अपने घुटनों पर रखकर उसे खोलने लगा। बीच में से रोटियां निकालकर उसने उसी मैले कपड़े को ठीक से अपने घुटनों पर बिछा लिया और उस पर रोटियां रखकर खाने लगा। रोटियां कुछ २ गीली जान पड़ती थीं, जिन्हें वह अचारी आम की एक फांक से लगा २ कर खा रहा था। दोनों युवतियां उसे बड़े ध्यान से देख रही थीं। उस के खाने का ढंग ही कुछ निराला था। वह रोटी का एक बड़ा ग्रास लेकर उसे

मुँह में डालता, फिर अंगूठे से उसे अन्दर ठोंसता हुआ एक हिचकी लेकर हलक़ से नीचे उतार लेता था। ऐसा मालूम होता था जैसे वह रोटी उस व्यक्ति द्वारा खाई जाना पसन्द न करती हो और वह ज़बरदस्ती उसे खाए जा रहा हो। दोनों युवतियां उसकी ओर देख २ कर ओठों के बीच मुस्करा रही थीं। खाना खा चुकने पर उसने घुटनों पर पड़े कपड़े को झाड़ा और उस से मुँह पोंछकर मूँछों को हाथ से दुलारता हुआ बिना पानी पिए वहीं बैठा रहा। खिड़की के बाहर झांककर उस ने देखा तो उसका कलेजा धकधक करने लगा। उस ने खिड़की से बाहर गर्दन निकालकर इधर उधर देखा और आहिस्ता से गर्दन अन्दर कर पैरों के बल सीट पर बैठ गया। उसकी निगाहें घटाओं के पार कुछ देख रही थीं।

लाल रिबन वाली युवती खिड़की की ओर सामने पांव फैला कर बैठी हुई थी। उस ने अपनी साथिन का सिर हिलाकर कहा, "ज्योति, वह देखो घटा कितनी काली है।"

ज्योति अपने दुपट्टे से निकले धागे खींच रही थी। उसने झुक कर खिड़की के बाहर झांका और माथे पर झुके बालों को अपनी पतली अंगुलियों से संवारती हुई पुन: अपनी जगह पर जम गई। उसने अपने पांव सामने की खाली सीट पर टिका दिए और अपनी सलवार की सलवटें ठीक करती हुई बोली, "कामना, पठानकोट कितनी देर रहोगी?"

कामना निरुत्साहित सी हो गई। उस क्षण उस ने मान लिया कि ज्योति में भावना नाम की कोई चीज़ नहीं है। उस ने यूंही सूखा सा उत्तर दिया, "और जाऊंगी भी कहां? वहीं तो रहना है।"

"परमात्मा न करे, यदि इस बार मार्किंग ज़रा स्ट्रिक्ट हो गई तो?..."

"तो क्या? सितम्बर तो कहीं गया नहीं। असल में रास मुझे सितम्बर ही आता है। एप्रेल इज़ जस्ट ए ट्रायल..." कह कर कामना ने नीचे गिरे

अपने आंचल को उठाया।

"डलहौज़ी नहीं आओगी ?" निमंत्रण के लहज़े में ज्योति ने कहा।

"डलहौज़ी !... रिज़ल्ट के बाद ही निश्चय कर पाऊंगी।" उस ने अपनी दाहिनी चोटी शाने पर से आगे लटका कर रिबन को कसते हुए कहा, "इस बार डलहौज़ी जाना कठिन ही दीखता है।"

"क्यों, पिछली बार भी तो वहीं तैयारी की थी ! अगर परमात्मा न करे कुछ गड़बड़ हो भी जाए तो पठानकोट में तो बला की गरमी होगी। ऐसे में पढ़ोगी क्या ? डलहौज़ी कम से कम मौसम तो ठीक रहेगा .." अपनी कमीज़ को ठीक करते हुए ज्योति ने कहा। कामना अपनी चोटी के अग्रभाग को हथेली पर घुमाते हुए बोली, "हाँ यह तो ठीक है, लेकिन वहां पढ़ने को मन नहीं होता। मन मार कर ही पढ़ाई करनी पड़ती है। और मन को मारने के हक़ में मैं नहीं...पास हो गई तो ज़रूर आऊँगी। फिर तो वहां के सीज़न का मज़ा भी है...!"

ज्योति ने उठकर टोकरी से हिंदी और अंग्रेज़ी की दोनों फ़िल्मी पत्रिकायें निकाल लीं। एक उस ने कामना की ओर बढ़ा दी, दूसरी के पन्ने स्वयं उलटने लगी।

घटायें क्षितिज के ऊपर उठकर आकाश में बिखरती जा रही थीं। देखते २ उन काली घटाओं ने तपते सूरज को ढांप लिया। रेलवे लाइन के दोनों ओर की हरियाली मुस्कराने लगी। घास की एक २ तिन मस्ती में झूमने लगी। काई के बबूल लहरा उठे जैसे उनकी रूठी जवानी लौट आई हो। पंखों की हवा बाहर की हवा के सामने अपना सा मुंह लेकर रह गई। वह पैसेंजर गाड़ी स्टेशनों पर रुकती ठहरती, पुलों से अठखेलियां करती छक छक दौड़ती जा रही थी।

सहसा बादल ज़ोर से गरजा। कामना ने गर्दन बाहर निकाल कर देखा। बूँदाबांदी होने लगी थी। कई बूंदें उसके शफ़ाफ़ चेहरे पर पड़ीं।

अपने संवरे बालों पर हाथ फेरते हुए उस ने अपना सिर अन्दर कर लिया। कामना ने थोड़ी देर बाहर बरखा में भीगे सब्ज़ाज़ार को देखा किया। फिर अन्यमनस्क भाव से पत्रिका के पन्ने पलटती हुई धीरे २ गुनगुनाने लगी—

यह बरखा बहार
सौतनिया के द्वार
न जा मोरे सांवरे पिया...

कामना गुनगुना रही थी। ज्योति ने दो एक बार पत्रिका से ध्यान हटाकर उसकी ओर व्यंग्य और परिहास लिए हुई आँखों से देखा। पर कामना आँखों में मुस्कराती गुनगुनाती रही।

बादलों की गरजन के साथ बरखा तेज़ हो गई। छत पर बारिश के शोर में पंखों की गूंज विलीन हो गई। कामना ने पत्रिका के पन्नों में उलझी ज्योति का कन्धा झंझोड़ कर कहा,

"री देख कितने ज़ोर की झड़ी लगी है।"

ज्योति ने पत्रिका से दृष्टि हटाकर बाहर देखा और बोली, "शीशा गिरा दे, फुहार अन्दर आ रही है।"

"हूँ! तू क्या जाने बे मौसम की बरखा कितनी सुहानी होती है।" कहकर कामना ने अपनी बाईं कलाई खिड़की से बाहर निकाल दी और अपनी पतली गोरी अँगुलियों को बारिश से बचाने लगी। उस सुहानी रुत में उसकी अंगुलियों के पोर मुस्करा उठे।

सहसा ज्योति पत्रिका के उघड़े स्थल में अंगुली रखकर उसे बन्द करती हुई बोली, "तेरी फ़िलासफ़ी ज़िन्दगी की मेरी समझ में नहीं आती। तुझे तो हर चीज़, हर बात बे-मौक़े की अच्छी लगती है। दिन को सोना, रात को जागना, अमावस का 'लाज', जेठ की बरसात, यह सब क्या है?... जहान की जो अजीब बात है तेरी खोपड़ी में समा गई है। जभी तो फ़ेल..."

"बस बस..." बीच में टोक कर कामना कहने लगी, "अपना २

चलन है लाडली !...सावन भादों की घटाओं में क्या रखा है ? वे तो आएँगी ही । बरसात की झड़ी और इस झड़ी में बहुत अन्तर है ।..."

ज्योति ज़रा तपकी, "खाक अन्तर है, इस झड़ी से सूरज तो दूर नहीं चला जाए गा ! मैं तो इतना जानती हूँ कि जो होना है, उसे हो लेने देना चाहिए..."

"हाँ हाँ तुम यही जाने रखो मेरी जान," कामना आँखें मस्ता कर बोली, "उसे कौन रोकता है लेकिन रेगिस्तान की झील का अपना महत्त्व है, क्योंकि वह भी बेठिकाना है । जेठ की झड़ी सुहानी है क्योंकि बेमौसम की है ना । समझी !..."

ज्योति उधर बेरुखी दिखा कर पन्नों में उलझ गई । कामना ने सैंडल नीचे उतारी । पांव सीट पर रख पीछे दीवार से टेक लगाकर अधलेटी सी बरखा का आनन्द लेने लगी ।

थोड़ी देर बाद ज्योति ने कामना की चोटी हिलाकर उसका ध्यान उस गंवार आदमी की ओर दिलाया, जो उस सुहानी घड़ी में घुटनों में सिर दबाए सिसक २ कर रो रहा था । खिड़की उस गंवार ने बन्द कर ली थी । वे दोनों हैरानी से उसकी ओर देखने लगीं । वे सोच रही थीं कि थोड़ी देर हुई उसकी आँखें उल्लास से चमक रही थीं ; बड़ी बेफ़िक्री से रोटी निगल रहा था, सहसा उसे क्या हो गया ? कामना ने हाथ की अदा से ज्योति से उसके रोने का कारण पूछा । ज्योति ने अपने पतले होंट तरेर कर अपनी अज्ञानता ज़ाहिर की । वे अनिमेष उसकी ओर देखती रहीं । वह अपने तहमद से आँखें पोंछ २ कर आँसू बहाता रहा ।

तभी पीठ वाली सीट से एक युवक उठकर उस व्यक्ति की ओर बढ़ा । युवक ने उसे कन्धे से हिलाया । वह सिसकता रहा । युवक बोला,

"भाई, बता तो सही, बात क्या हुई है, टिकेट तो पास है ना ?... वाह, फिर क्यों घबराते हो ?...यार बता तो सही, शायद तेरे काम आ सके !..."

उस व्यक्ति न अपनी लाल आँखें उस युवक की ओर उठाईं। उसकी मूँछें ओठों पर फैल गई थीं। रुंधी हुई आवाज में बोला, "कुछ नहीं बाऊ जी, ...मैं सुबह कचहरी में तारीख भुगतने आया था। ज़मींदार ने बेदख़ली का दावा कर रखा है...पन्द्रह साल से उसकी ज़मीन 'वाह' रहा हूँ; खुद ही छोड़ देता, मगर रोटी का और कोई वसीला दिखाई नहीं दिया...तीसरे हिस्से की बजाए आधा लेकर भी उसकी तसल्ली नहीं होती। कहता है—ज़माने की हवा बहुत ख़राब हो गई है, सारी ज़मीन अपने हलों तले रखूंगा...। अब वहाँ कचहरी में भी कुछ नहीं हुआ। हाकिम का कोई दोस्त आया हुआ था। वह उठकर उसके साथ चल दिया। मुझे अगले महीने की तारीख मिल गई है...बाऊ जी ग़रीब की तो अदालत में भी मिट्टी ख़राब है...पैसे के बिना आर्दली भी धक्के देते हैं..." कहते २ उस ने फिर आंखें पोंछनी शुरु कीं। बाहर बादल एक बार फिर ज़ोर से गरजा। वह घुटनों पर ओठ फेरता हुआ गले में ही रोने लगा। "न जाने परमेशर ने किस जन्म का बदला लिया है मुझ से...सारी गाही फ़सल बाहर खेत में पड़ी है। सारा अनाज बरबाद हो गया होगा...बाऊ जी किसान का यही एक आसरा होता है।"...एक बार उस ने उड़ती दृष्टि दोनों युवतियों तथा डिब्बे के बाक़ी मुसाफिरों पर दौड़ाई। सिर को दोनों हाथों से जोर से कसते हुए फिर फूट पड़ा, "मैं साल भर की रोटी कहाँ से लाऊँ गा;...बड़ी बे मौसम की बरखा हुई है...।"

चौबरसी

किसानों का तारा उदय हुआ।

तारा चढ़ते ही उठ कर खुशिये ने चिलम भरने के लिए आग सुलगाई। हुक्के की टोपी के साथ ही बन्धे चिमटे से आग टोपी में भर रहा था कि टोकरी के नीचे से मुर्गे ने बांग दी। दूर नजदीक मुर्गों की बांगें सुनाई दे रही थीं। उसका मुर्गा बांग दे देकर कह रहा था कि सुबह हो गई है, मुझे खुला छोड़ दो। किन्तु अभी अन्धेरा बहुत था। पौ फटने को बहुत देर थी। खुशिये ने टोकरी नहीं उठाई और मुर्गा बांग देता रहा। अपने बैलों को हल के आगे जोत, हुक्का उठाकर वह खेत की ओर चल दिया। उस ने सोचा था—आज बाग के साथ वाले छोटे खेत में ही हल चलायेगा। पौ फटने तक दोहर डाल लेगा। उसके बाद बीज बोकर सुहागा फेर डालेगा। इस प्रकार सूर्योदय तक यह सारा काम समाप्त कर लेने की उसकी योजना थी।

मुँह अंधेरे से 'राम तेरा भला करे!' 'पैर ते हूँ!' 'बन्ने! बन्ने बन्ने! 'पाड़ा मल, पाड़ा मल!' 'भागां वालया!' पुकारते पुकारते दिन चढ़ने तक खुशिये ने अपना सारा काम समाप्त कर लिया। हल की कील ढीली कर दी और हुक्का लेने खेत के किनारे गया। वहां खड़े होकर उसने खेत को ठीक-ठाक देखा और सन्तोष की एक लम्बी सांस ली। सुहागा वहीं खेत के साथ कमाद में फेंक आया, जहां से उठाया था, कि फिर किसी दिन ले जायेगा।

बैलों को 'चल !...चल !' कहकर खुशिया खेत से बाहर निकल आया। रास्ते में उसे रामू मिला। खुशिया को जल्दी लौटते देख आश्चर्य के स्वर में बोला, "खुशिया चाचा क्या बात है, आज इतनी जल्दी लौट आये ? कहीं जाना है ?"

"नहीं, जाना तो कहीं नहीं। आज मां की चौबरसी है ना ! सारा इन्तजाम करना है। ला, दम तो लगवा !" रामू ने अपना हुक्का खुशिया की ओर बढ़ा दिया। गुड़-गुड़ करता हुआ वह देसी तम्बाकु के दम भरने लगा। बैल आगे जा चुके थे।

रामू उसकी मां की प्रशंसा कर रहा था, "बहुत भली थी बेचारी। जबान की चाहे कड़वी ही थी पर दिल से उस ने कभी किसी का बुरा नहीं चाहा। उस दिन ही देखो चाचा, मैं अपनी हवेली के बाहर बैठा चिलम पी रहा था। वह बाहर से आई। मुझे फटकारती हुई बोली—'अरे निखट्टू, यहां बैठा इस गां को सुलगा रहा है। खेत की तो सुध ले। जा देख सांड तेरा कितना खेत चर गया। मैं न पहुँचती तो समूचा ही चट कर जाता। खेती खसमां सेती।" और भी कई घटनाओं का हवाला देता हुआ रामू खुशिया की मां को याद करता रहा।

"यह ब्रान्ती पकड़ी है। पट्ठे लेने जा रहे हो ?"

"हां चाचा रात को कालू का बछड़ा खुल गया था। सारे पट्ठे खा गया। मैंने सोचा पशु रात के भूखे होंगे, पहले यही काम कर लूं।"

"हां बेटा, हमारा धर्म यही है। जिनकी कमाई खायें, उन्हें भूखा क्यों रखा जाए। पर जल्दी लौट आना। मेरा हाथ ही बंटाओगे।"

"अच्छा चाचा !" कहकर रामू अपना हुक्का संभाल चल दिया। खुशिया अपने बुझे हुक्के को उठाकर गांव को चल दिया। हवेली में पहुँचकर उस ने बैलों को अपने २ कीले पर बांधा और उनके आगे चारा डाल कर घर पहुँचा।

घर में उसका बेटा बंसी ईन्धन को छोटा २ काट रहा था। अपनी पत्नी

कुन्ती को आवाज़ दे कर खुशिया ने बाज़ार से लाया जाने वाला सारा सामान पूछा। कुन्ती ने एक एक कर सब चीज़ें बता दीं। माँ को पहुँचाया जाने वाला बिस्तर कपड़े व बरतन पहले ही वह शहर से ले आया था। नहीं तो वे चीज़ें गांव से अधिक दाम पर लेनी पड़तीं। केवल रसोई का सामान ही बाज़ार से लाना था। कुन्ती से रुपये लिये और अपनी पगड़ी ठीक करता हुआ वह बाज़ार को चल दिया।

बाज़ार वहां का गिनती की पांच छः दुकानों को कहा जाता था। गिन २ कर सब सामान खुशिया ले आया।

कुन्ती बोली, "सारा काम मैं कैसे सम्भालूँगी। पुरोहितन को बुला लेते!" खुशिया ने अपनी बेटी मुन्नी को पुरोहितन को बुलाने भेज दिया।

पुरोहितन के आने पर थोड़ी देर में ही सारा काम आरम्भ हो गया, कुन्ती रसोई का सामान आवश्यकता अनुसार पुरोहितन को पकड़ाती रही। इतने में खुशिया नहाँ धो कर मां का श्राद्ध करवाने के लिए तैयार हो गया। खुशिया के नहाते २ बंसी जा कर पण्डित को बुला लाया था। पण्डित ने गाय का गोबर फेर कर पवित्र किए स्थान पर आटे की लकीरों से देवी देवताओं के चिन्ह बनाए। चौबरसी पर मां को पहुँचाया जाने वाला सारा सामान निकलवा कर पास रख लिया। खुशिया को बुला लिया कि आकर मां को पिण्ड दे ले। खुशिया पण्डित की बाईं ओर बैठा उसके मन्त्र बोलते ओठों की ओर ताकता रहा। पण्डित रेलगाड़ी की रफ़्तार से मन्त्रोच्चारण कर रहा था। खुशिया बेचारा क्या जाने क्या बोला जा रहा है। उस ने सोचा होगा—शायद ये मन्त्र ही हैं जो ये सब वस्तुएँ मां तक पहुँचा देंगे। जैसे वे पण्डित न होकर ईश्वर के डाक विभाग का पोस्टमास्टर हो, जो वे सब चीज़ें रजिस्टरड पार्सल द्वारा उसकी मां को भेज देगा। 'यहां रखो एक पैसा,' 'यहां रखो सवा रुपया,'...'गुरु की दक्षिणा भी रख दो'...कुशा बन्धे हाथों से खुशिया नाना प्रकार की दक्षिणाएं पण्डित जी को अर्पित करता रहा।

पण्डित जी बोले, "खुशीराम मां की ओर से गोदान भी करना चाहते हो ?"

"नहीं पण्डित जी घर में एक ही गाय थी। वह भी परसाल मर गई।" खुशिया ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा।

पण्डित जी ने स्थिति को अच्छी प्रकार समझते हुए कहा, "खुशीराम गाय देने को कौन कहता है ! गाय के नाम पर कुछ रुपये, जितने तुम चाहो, रख दो।" पहले तो खुशिया समझा नहीं कि यह किस वेद की कौन सी ऋचा है ? क्योंकि वेद तो उसकी बुद्धि से परे की चीज थे। एकाएक उसका माथा ठनका। उसकी आँखों के सामने 'हर की पौड़ी' पर पंडों की भीड़ तरने लगी। वह दृश्य उसके दिमाग में घूमने लगा जब अपने बापू की अस्थियां लेकर वह हरिद्वार गया था तो हर की पौड़ी, कनखल—सभी जगह पंडे गाय को पकड़ कर चिल्ला रहे थे, 'गोदान कर लो गोदान..., यात्री गोदान कर ले !' खुशिया को पता लगा था कि एक रुपये में ही गोदान हो जाता है। उसने सोचा था—यह तो बहुत सस्ता सौदा है। इस प्रकार न जाने कितने भक्तों ने उस गाय को अपने पितरों के पास पहुँचाया होगा। किन्तु गाय वहीं की वहीं खड़ी थी।

बहाना करता हुआ खुशिया बोला, "पण्डित जी जब पुजत होगी, गोदान अवश्य कर दूँगा। अब रहने ही दीजिए।"

"अच्छा चौधरी, तेरी इच्छा, भगवान तुझे लम्बी उमर दे !" आशीर्वाद की लम्बी सांस लेते हुए पण्डित जी बोले।

संस्कार समाप्त हुआ। पुरोहित को बुलाकर पण्डित जी ने उसकी वस्तुएँ उसे दे दीं। अपनी पास रख लीं। गुरु की दक्षिणा अलग रख दी। पटरी के ब्राह्मणों के गिलास और पटके भी निकाल दिए।

बुलाए हुए पटरी के पांच ब्राह्मण भी आ पधारे। मां को जीवन में घी नसीब हुआ कि नहीं, यह तो वही जाने, किन्तु पटरी के ब्राह्मणों के लिए

देसी घी की पूरियां तथा हलवा अनिवार्य रूप से बनाए गए। पटरी के ब्राह्मणों को पक्की रसोई दी जाती है, यह कुन्तो ने सुझाया था। कुन्तो का इस दिशा में बौद्धिक विकास भी पास पड़ोस की सयानी स्त्रियों द्वारा हुआ था।

पटरी के पांचों ब्राह्मण भर पेट खा, डकारें लेते हुए उठ खड़े हुए। अपने बरतन और पटके जो दान में मिले थे और दांत-घिसाई के रूप में दक्षिणा भी ग्रहण कर खुशिया के घर से विदा हुए। अब पास पड़ोस से बुलाए गए लोगों के खाने की बारी थी। कुन्तो ने स्त्रियों को अलग बैठा कर खिला दिया। पुरुष खुशिया के साथ बैठने लगे। इस सारे काम में रामू खुशिया के साथ बुरी तरह जुटा रहा था। अब वह बैलों को पानी पिलाने हवेली गया हुआ था। खुशिये ने बंसी को साथ भेज दिया था ताकि दोनों मिलकर आसानी से पिला सकेंगे।

सब लोग खाने को बैठ गए किन्तु खुशिया रामू की राह देख रहा था। बंसी का क्या है वह बाद में भी खा सकता है, क्यों कि वह तो पहले भा चावलों को हाथ मार चुका है। खुशिया और रामू अभी तक निराहार थे। खुशिए को तो श्राद्ध कराने के लिए रहना ही था, पर रामू को फ़ुरसत ही नहीं मिली कि कुछ पेट में डाल लेता। वहां तो रसोई को सुच्चा रखना भी आवश्यक था।

रामू आ गया ता भोज आरम्भ हुआ। रामू खुशिया की बग़ल में बैठा था। इधर उधर देख कर अपने स्वभाव के अनुसार रामू ने खुशिया को खाते हुए भी बातों में लगा लेना चाहा—"कितना खर्चा चढ़ गया इस कारज पर चाचा ?"

"आगे देखकर खाना खा, बाद में देखा जाए गा।"

"तुम ने अच्छा नहीं किया !" कह कर रामू ने चावलों का ग्रास मुंह में डाल लिया।

"अरे अब तो ज़बान को ताला लगा, बाद म कह लेना जो मन

चाहे।" धीमें से खुशिया ने कहा ताकि और लोग सुन न लें राम जबत कर गया।

खाना खा चुकने के उपरान्त रामू ने अपनी थैली से देसी तम्बाकू की चिलम भरी और सुलगा कर अलग एक दीवार के साथ जा बैठा। हुक्का देख कर खुशिय के गले में भी मीठी २ खारिश सी होने लगी। वह रामू की ओर हो लिया। अब वे दोनों ही थे। तीसरा कोई न था, सिवाय दीवार के। रामू हुक्के का दम भरकर बोला, "चाचा, यदि चौबरसी तुम न भी करते तो कौनसी आफ़त आ जाती। तीन कनाल का एक खेत तुम्हारा पहले ही बन्धक पड़ा हुआ है। उस पर तुम ये फजूल के खर्चे चढ़ाते जा रहे हो।"

"रामू, तुम अभी बच्चे हो। अगर मां की चौबरसी न मनाता तो लोग कहते कि ऐसा नालायक बेटा जनना था, कि मां की गति भी न कर सकता फिर कुन्तो कहती थी कि घर की नाक का सवाल है, इतनी सी बात के लिए हम नाक कटवा लें?" खुशिया ने पगड़ी के पल्ले को ठोंसते हुए उत्तर दिया।

"पर चाचा, उस महाजन देवराज ने अपने बाप की न बरसी मनाई न चौबरसी, और न ही वह अपने किसी पितर का श्राद्ध ही करता है। फिर भी उस के सभी घर वालों के नाक है। क्या उसके बापू की गति नहीं हुई? वह भूत बन गया है?"

"वह तो समाजी है। कम्बख्त किसी की परवाह नहीं करता। रामू, छोड़ क्या रखा है इन बातों में! जो हो गया सो हो गया," हुक्के का दम भर कर खांसता हुआ खुशिया बोला, "तुम ने तो पहले ही कहा था कि अगर दान ही देना है तो पाठशाला को दे दूँ। अपनी ही बेटियों को सुख रहेगा। पर कुन्तो मानने वाली न थी!"

"चाचा, भरे पेटों को और भरने से वे फटेंगे ही। फिर अपने खाली पेट को निचोड़ कर उभरी तोंदों पर लेप करना कहां की अक़लमन्दी है! मैं तो कहता हूँ ये रीति रिवाज अब छोड़ देने चाहियें। अब

य थोथे हो गए हैं। इनका खोखलापन अब हम से भरा नहीं जाएगा। चाचा, तुम हिम्मत करो तो सब कुछ हो सकता है।"

"मेरे किए से क्या होगा..... ?" गरदन हिलाता हुआ खुशिया बोला।

"तुम्हारे साथ की जरूरत है। तुम आगे से मां और बापू का श्राद्ध करना बन्द कर दो। देखादेखी सब लोग बन्द कर देंगे। सभी किसान चाहते तो हैं ही! उन्हें केवल पहल करने वाला चाहिए। तुम्हीं अगुआ क्यों नहीं बन जाते।"

"न भई, पता नहीं कोई साथ दे न दे। सारे गांव की फटकारें मैं फजूल म क्यों मोल लूँ! मैं ने तो जो करना था कर दिया। अब रहे श्राद्ध, सो पुजत होगी तो कर लिया करूँगा।"

इसी तरह के तर्क वितर्क में दिन ढल गया। रामू ने माथे पर हाथ रख कर चुन्धियाई आंखों से सूर्य की ओर देखा और खुशिया के घुटने पर हाथ रखता हुआ बोला, "चाचा, पट्टों का वकत तो हो गया है।" दोनों वहां से उठ खड़े हुए। रामू हुक्का उठाकर बाहर चल दिया। खुशिया बंसी से खेत में आ जाने को कहकर चल दिया। उस ने बंसी को बताया था कि आज चारे के लिए ईख ही ले आएंगे। चारा भी चल जाएगा और सुबह बच्चे रस भी पी लेंगे। बन्सी घर के लिए मिट्टी का तेल लाने बोतल पकड़कर बाजार को चल दिया। दुकान के थड़े पर बैठते हुए उसने बोतल दुकानदार के आगे सरका दी कि तीन आने का तेल डाल दे। दुकानदार बोतल में तेल डालने अन्दर गया। इतने में बंसी का ध्यान दुकान की एक ओर पड़ी चारपाई पर पड़ा। बन्सी आंखें फाड़ २ कर उसे पहचानने का प्रयत्न करने लगा। खूब देख भालकर चारपाई उस ने पहचान ली। तेल भरी बोतल पकड़ कर एक चवन्नी उस ने दुकानदार को दी। एक आना वापस करने के लिए दुकानदार ने अपना गल्ला खोला। बन्सी का ध्यान उधर गया तो उस ने पूछा कि गल्ले की दाईं ओर यह नए

गिलास बिकाऊ हैं क्या ? जब उत्तर हां में मिला तो उस ने गिलास दिखाने को कहा। गिलास हाथ में लेकर बन्सी उसे नीचे ऊपर उलटा २ कर देखने लगा। उसका सन्देह निश्चय में परिवर्तित हो गया। गिलास वहीं छोड़, अपनी बोतल उठाकर घर की ओर लम्बें २ डग भरने लगा।

बंसी घर पर तेल रखकर भागा २ अपने बापू के पास ईख के खेत में पहुँचा। गुस्से से लालपीला होता हुआ बोला, "बापू, आज का दिया सारा दान दादी को पहुँच गया। उसकी गति भी हो गई अब तो !".....खुशिया ने उस के चेहरे का भाव देखकर पूछा, "बात क्या है, तुम इस तरह गुस्से क्यों हो रहे हो ?"

"वह पुरोहित सब सामान गिरधारी शाह के पास बेच गया है। उस खाट पर अब दादी की बजाए गिरधारी शाह खुर्राटे लेगा।"

खुशिया द्रान्ती हाथ में लिए उठ खड़ा हुआ। सूर्य क्षितिज में अपना मुँह छिपा लेना चाह रहा था। उसके क्षीण होते प्रकाश में खुशिया के मुख की सिकुड़ती झुरियां स्पष्ट दीखने लगी थीं। झुरियों से घिरी आंखें छोटी हो आईं। माथा सलवटों से भर गया जैसे खद्दर को झंझोड़ कर छोड़ दिया हो। खुशिया को मानसिक क्लेश पहुँचा था। वह जहां खड़ा हुआ था द्रान्ती जमीन में गड़ता हुआ वहीं बैठ गया। सोचने लगा, 'दांतों से एक एक पैसा पकड़ कर कुछ रुपये इकट्ठे किए थे कि मां की चौबरसी तो खुले हाथों मनाई जा सके। पर इन पण्डितों ने हमारे खूनपसीने की कमाई को पहचाना नहीं। हम ने इन पर विश्वास किया कि इनका बताया रास्ता ही ठीक है। जाने ये रास्ते इन्हों ने बनाए ही इस लिए थे कि इन पर चलने वालों को आसानी से लूटा जा सके। इन्होंने सोचा होगा कि किसान की झोंपड़ी जल रही है, कोयले ही हाथ लग जायें तो क्या बुरा !'

गोधूलि के समय दोनों बाप-बेटा ईख के गट्ठे सिर पर लादे गाँव लौटे। अपनी हवेली के बाहर रामू पट्ठे काटता हुआ मिला। खुशिया ने गट्ठा सिर से

नीचे फ़ेंका और बंसी को हवेली जाने को कह दिया। खुशिया ने सारा माजरा रामू को कह सुनाया।

रामू बोला, "चाचा, यह तुम्हारे साथ कोई नई बात थोड़े ही हुई है, यह तो इनका नित नेम है।" और चौबरसी पर आए पण्डित की बहन के साथ एक ज़ोरदार और कलात्मक पंजाबी गाली में नाजायज़ रिश्ता जोड़ता हुआ बोला, "मेरा बस चले तो उसे ऐसी जगह मारूँ जहां पानी न मिले। चाचा, लेकिन हम तो बनी बनाई पगडंडियों पर चलने में ही अपनी भलाई समझते हैं। नयी राह अपनाने का साहस नहीं बटोर पाते। पर हमें भूलना नहीं चाहिए कि ये रास्ते भी कभी नये रहे होंगे। जिन्हों ने इन्हें बनाया और अपनाया साहस का सहारा तो लेना ही पड़ा होगा उन्हें। जो रास्ते ठीक हैं उन से विमुख होना तो सिर-फिरों का काम है। पर जो हम जानते हैं कि दुःखदाई हैं, उन्हें क्यों नहीं छोड़ देते?"

तर्क ही तो है। एक को मान्य हो सकता है दूसरे को नहीं। रामू की दलीलें खुशिया को पसन्द न आईं। उसे अब भी बुज़ुर्गों के बनाए नियम, सिद्धान्त और मार्ग ही ठीक जान पड़े। उस ने सोचा कि जो बात बुज़ुर्गों ने कही है उस में कुछ न कुछ सार तो होगा ही। बड़ों के कहे और आमले का स्वाद बाद में ही आता है। लेकिन खुशिया तो स्वाद खूब चख चुका था। फिर भी पूर्वजों पर उसकी आस्था ने उसकी पनपती विद्रोह भावना को दबाए रखा और रूढ़ी की जड़ें जान पकड़े रहीं। मस्तिष्क में विचारों का बवण्डर लिए खुशिया ईख का गट्ठा उठाकर हवेली लौट आया।

दिन की सारी राम कहानी पर खाक डालता हुआ वह अपने काम में जुट गया। और धरती सूर्य के गिरद घूमती रही.....

डा० ऊषा नरेन

(ऊषा भाबी से क्षमा-याचना सहित)

सुबह की सैर से लौट, नहा धोकर मैं पढ़ने बैठ गया था। दसेक पृष्ठ ही पढ़े थे कि दरवाजे पर दस्तक मिली। मैंने बुकमार्कर किताब के उघड़े पृष्ठ पर रखा और आगन्तुक को अन्दर चले आने के लिए कहा—

"दरवाज़ा खुला ही है!"

"हैलो! .." कैलाश ने दलहीज़ के अन्दर क़दम रखते हुए कहा और अपने पीछे दरवाज़ा बन्द कर, आकर चारपाई पर बैठ गया।

क्या बात है वकील साहब, सुबह २ डिक्शनरी खोल कर बैठ गए?"

"अरे नहीं, यह तो रोलां का 'ज्यां क्रिस्तॉफ़' है। बहुत अच्छा लिखा है यार, ज़िन्दगी में इसकी पैठ बहुत गहरी है।"

"बाज़ार नहीं गए अभी?" अन्यमनस्क भाव से कैलाश बोला।

"नहीं, रात नाश्ता यहीं लाने को कह आया था। अभी आता होगा। तुम भी लोगे, कह आऊं?" और मैं कुर्सी से उठ कर स्लीपर पहनने लगा।

"तुम बैठो यार तकल्लुफ़ की क्या ज़रूरत है?" मैं चाय पी आया हूँ।

आज बेतकल्लुफ़ कैलाश की आवाज़ मुझे कुछ दबी २ सी जान पड़ी। वह कभी अख़बार के पृष्ठ पलटता, फिर उसे तह कर के रख देता, कभी

बिस्तर की चादर को हाथ में पकड़कर उसे ध्यान से देखता और नखुनों से उसे कुरेदने लगता, कभी यूँही अलमारी में पड़ी किताबों की ओर घूरता और कभी अपनी चप्पल की नोकें आपस में टकराता, मैं ने पुस्तक उठाकर एक ओर रख दी और कैलाश से पूछा —

"क्या बात है कैलाश आज बड़े चुप्प हो ? "

"नहीं ऐसी तो कोई बात नहीं !" अपनी अँगुलियां मसलते हुए कैलाश ने उत्तर दिया। कैलाश ने उठकर अलमारी से एक किताब निकाली और उस के पृष्ठ पलटने लगा। मैं ने उसके चेहरे से कुछ पढ़ने का प्रयास किया, फिर मेज़ पर बिखरी किताबें उठा उठाकर तरतीब से अलमारी में लगाता रहा । इतने में रेस्तरां का बेयरर् नाश्ता लेकर आ गया। मैं ने उसे नाश्ता मेज़ पर रख देने को कहा। बेयरर् नाश्ता रखकर एक ओर हटकर खड़ा रहा। मैंने उसे ट्रे ज़रा ठहर कर ले जाने को कह दिया और स्वयं किताबें सम्भालता रहा । किताबों से निपट कर मैं ने दूध दो प्यालियों में उंडेला और दूसरी कुर्सी अपने पास खींच कर कैलाश को आ बैठने को कहा।

"फ़ॉर्मेलिटी म क्यों पड़ते हो ! सच मैंने चाय पी ली है। तुम लो !" कहकर कैलाश ने पुस्तक बन्द कर दी।

मैंने नाश्ता करते २ कैलाश को देखा। वह उसी तरह सूने में कुछ खोज रहा था। दो कप दूध के बाद मैं ने चाय का एक प्याला लिया। ट्रे को मेज़ की एक ओर रख दिया। तौलिए से हाथ पोंछते हुए मैं कैलाश की ओर घूमा,

"कैलाश, कुछ न कुछ बात ज़रूर है जो इस क़दर चुप हो ! "

कैलाश टिकटिकी बांधे मेरी ओर तकता रहा। अनजाने मेरी सांसें कुछ तेज़ी पकड़ने लगीं। मैंने कैलाश के कन्धे पर हाथ रखा,"क्या बात है ?"

"बहुत बुरी खबर है भइया ! " कैलाश की आंखें तिरीं।

".....'मेरा दिल ज़ोर २ से धड़कने लगा।

"तुम्हारी ऊषा भाबी आज रात एक मिलिटरी आफ़िसर के साथ पकड़ी गई है।"

मैं जैसे आकाश से धरती पर पटक दिया गया होऊं। मेरा दिमाग़ पथरा कर रह गया। मेरी सब की सब सूझ इस एक वाक्य की आन्धी में बह गई। आज अपनी उस स्थिति का ध्यान आता है तो सोचता और जान लेता हूँ कि तब मेरी सूझ के स्तूप नैतिकता की खोखली नींव पर खड़े थे। मैं कैलाश की ओर फटी २ आंखों से देखता रहा। उस की आंखें भी जैसे मुझ पर तरस खा रही हों। मेरे सिर पर जोर २ से हथौड़े बजने लगे! मैं ने सिर को झटक कर देखना चाहा कि मैं कहां हूँ? सहसा कैलाश ने मुझे बांह से पकड़कर चारपाई पर बैठा लिया। कुछ देर वह भी कुछ न बोला। बस गुमसुम मेरी ओर तकता रहा। बहरहाल, अपनीसमूची क्षमता बटोर कर मैं ने अपने आप को सहेजा और कैलाश से पूछा। "यह सब कैसे हुआ कैलाश, तुम्हें कहां से पता चला?" कैलाश ने एक बार फिर मुझे फटी नज़रों से देखा और बोला—

"मैं ला० रामनाथ के हां सुबह २ एक काम से गया था। उन के साथ अधेड़ उमर के दो व्यक्ति और बैठे हुए थे। जिन में से एक को मैं शकल से जानता हूँ। वे लोग मेरे जाने से पहले ही यह चर्चा लेकर बैठे हुए थे। मेरी ओर देखकर तुम्हारा नाम लेकर लाला जी बोले, 'भाई कलाश, तुम तो अमुक वकील के साथ घूमा करते हो। कई बार बातचीत होती होगी। लेडी डा० ऊषा के साथ उसकी बहुत मिलनसारिता है। डा० ऊषा कैसी औरत है?' फिर लाला जी ने बताया,

'अभी २ मुझे एक आदमी आकर सुना गया है कि डा० ऊषा रात को एक मिलिटरी आफ़िसर के साथ पकड़ी गई है। किसी के हां बच्चा होने वाला था। वह उसे रात को बुलाने गया। ग़लती से बाहर का दरवज़ा खुला रह गया होगा। एक कमरे में रोशनी पड़ रही थी। उसने उधर जाकर शीशों के भीतर से देखा और पड़ोस के अपने एक दो परिचितों को उस ने उठाया। पता लगने

पर मिलिटरी वाला तो वहां से खिसक गया। लेकिन सुबह होते शहर भर में खबर फल गई। उस के सम्बन्ध में ऐसी बातें सुन तो मैं कई बार पहले भी चुका हूँ। लेकिन बात करने का ऐसा सलीक़ा है उस औरत को कि उसपर संदेह करते पाप मालूम होता है। देखने को तो वह निरी देवी जान पड़ती है। मेरे हां प्रायः आती है। बड़े आदर प्यार से सब को मिलती है। पर क्या मालूम कि अन्दर से वह कैसी है। औरत का कोई पता नहीं चलता भई, बड़े बड़ों को उल्लू बना जाती है। फिर वह तो खूबसूरत और जवान भी है। अभी उमर ही क्या है उसकी!"

कैलाश कहता रहा और मेरे मस्तिष्क में रामनाथ के मोटे होंट आ आ कर कचोटें भरते रहे। कैलाश मेरे पास बैठा अवाक मेरी ओर तकता रहा। शायद मेरे चेहरे के उतार चढ़ाव देख रहा था। मैं ने उस के सामने होंट तक नहीं हिलाए। ला० रामनाथ शहर का जाना माना भद्रपुरुष है। कई पाठशालाएँ, धार्मिक संस्थायें उस के दान पर चलती हैं। मेरे जसे बीसियों के पेट उसके सहारे पलते हैं। मैं रामनाथ को तले से जानता हूँ। अकेला मैं ही उसके अन्दर को जानता हूं—ऐसी बात नहीं।

अभी दो साल ही बीते हैं कि लाला जी की बड़ी सुपुत्री अपने ड्राइवर के साथ तीर्थ यात्रा के लिए भाग गई थी और तीन महीने के बाद घर लौटी थी। आस पास के जानने वालों को पता चल गया था। लेकिन वे यही मान लेते रहे कि वह अपने ननिहाल हरिद्वार गई है। पर्दा तब उठा जब वह एक एंजिनियर के साथ ब्याह दी गई और पतिव्रता पत्नी के नाते विवाह के चार महीने उपरान्त ही एंजिनियर महोदय के एक बच्चे की मां बन गई।

अभी थोड़े दिनों की बात है कि लाला जी की छोटी सुपुत्री अनुसूइया भाबी के पास आई, बहुत गिड़गिड़ाई, बात कुछ भी नहीं थी। अनुसूइया मरियम और कुन्ती की परम्परा के रास्ते पर मील का पत्थर गाड़ने वाली थी कि उसे अपने पिता की प्रतिष्ठा का ध्यान आया। भाबी के पांव पकड़कर रोती

सिसकती रही कि जैसे भी हो उसकी, उसके ख़ानदान की लाज बचा ली जाए।

मैं चारपाई पर बैठा चादर मसलता रहा। कलाश अपने जूतों की नोकें आपस में टकराता रहा। मैं हैरान था कि लाला रामनाथ भाबा के संबंध में खुले मुंह यह सब कसे कह सका। मैं मानता हूँ कि यह सब कह लिखकर मैं ने एक उच्छृंखल स्वभाव के व्यक्ति की तरह रामनाथ को एक सस्ती सी गाली देकर अपनी सन्तुष्टि कर लेनी चाही है। लेकिन इस से आगे उस के विषय में कुछ नहीं कहूँगा। मैं जानता हूँ कि शहर में उस की प्रतिष्ठा है, वह इज्जतदार आदमी है; क्योंकि प्रतिष्ठा और इज्जत सिक्कों के मोल भी खरीदी जा सकती है। मुझे क्या जरुरत पड़ी है कि रामनाथ जैसे प्रतिष्ठित जनों के ड्राइंगरूमों के झीने पर्दे उठाऊँ ताकि वह अपने घर में ही रोम्यो जुलियत अभिनीत होता देख सकें। मैं भाबी के संबन्ध में भी कुछ नहीं कहता, क्योंकि वह मेरी भाबी ही न होकर बड़े २ ख़ानदानों की बहू बेटियों की राज़दान भी है। जहां वह मेरी भाबी है, वहां वह इन बड़े घरानों की डा० ऊषा भी है।

रेस्तरां का बेयरर बरतन लेने आया तो मैं ने उसे कह दिया कि वह कचहरी जाकर मुंशी को घर आने के लिए कह आए। बेयरर बरतन ले कर चला गया। कैलाश अन्यमनस्क भाव से मेज़ पर पड़ी एक पुस्तक उठाकर उस के पृष्ठ उलटता हुआ बोला, "यार, अगर डा० ऊषा भी ऐसी हो सकती है तो कौन सी लड़की या औरत है जो विश्वासपात्र कही जा सके!..." कैलाश संभवतः बात जारी रखता और भाबी के प्रति अपने गहरे विश्वास का प्रदर्शन करता रहता; लेकिन उस ने मेरी ओर अनिमेष दृष्टि से देखा और उठ कर दुपहर को पुनः मिलने की बात कहकर चल दिया।

कैलाश अपने पीछे दरवाज़ा बन्द कर के चला गया। मैं ने बिस्तर पर लेटते हुए पास पड़े तकिए को उठाकर मुंह पर डाल लिया। अनजाने मेरे पथराए हुए दिमाग़ की चट्टान के साथ कई हिलोरें आ आकर टकराती रहीं। हिलोरों की उस टकराहट के फेन से नरेन निकला और मेरे सामने आकर खड़ा

हो गया। पहले उस ने एक झटके से मेरे मुंह पर से तकिया हटाकर परे फैंक दिया। फिर एक व्यंग्यात्मक हंसी हंसता हुआ बोला—"पगला कहीं का ! सच्चाई से मुंह छिपाते हो ? पगले ! औरत औरत है, साथी है, ज़िन्दगी का सब कुछ तो नहीं। औरत भी हांड-मांस का पुतला है, उस में भी दिल है, जलन है, उस जलन को शान्त करने की पिपासा है। जब उस जलन का शोला भड़क उठता है तो औरत सब बांध तोड़कर उस शोले को बुझा लेना चाहती है। इस तरह ये शोले उठते रहते हैं और औरत उन्हें बुझाने के लिए छटपटाती रहती है। कई बार ये शोले दूसरों को भी अपनी लपेट में ले लेते हैं ! .." और फिर ज़ोर से हंसता हुआ नरेन मेरे मस्तिष्क के कुहासे में गुम हो गया। मैं अपना बाज़ू आंखों पर रखे हुए शिथिल पड़ा रहा। फिर बारी २ नरेन, भाबी और बिनोद के चेहरे मेरी आंखों की पुतलियों में झिलमिल तैरने लगे। मेरे दिमाग़ के किसी कोने में एक पक्षी ने पंख फड़फड़ाए और उड़ कर पास ही अतीत के वृक्ष की एक डाल पर जा बैठा—

'नरेन को अभी संसार से विदा ले लेने का कोई प्रयोजन नहीं सूझता था कि एक दिन भाबी को पास बिठा कर मुझे बग़ल में लेता हुआ बोला,

"जॉनी, अपनी भाबी से वायदा करो, कितने दिनों में शादी कर लोगे और यूं रातों को उठ उठकर पागलों की तरह सिसकियां न भरा करोगे। मेरे सामने तो तुम फ़िलासफ़ी झाड़ने लगते हो... ।"

"भाबी तुम ने तो मुझे कभी रोते नहीं देखा ना !"

"ये कहते हैं। लेकिन तुम अपने में खोए २ से क्यों रहते हो ? "

"वह तो मेरी सनक है भाबी, और विवाह ! मैं सोचता हूँ—मैं इस के लिए बना ही नहीं। विवाहित होने भर का ख्याल ही मुझे असह्य है। मैंने कभी इस प्रकार के अपने भविष्य की कल्पना नहीं की। तुम मुझ पर विवाह ठोंसो नहीं। मेरी तो क्या, उस बेचारी की चिन्ता करो, जो मुझे सब कुछ देकर खाली हाथ रह जाएगी और जीवन भर अपने भाग्य को कोसती रहेगी।"

"कैसी बातें करता है ?" मेरे सिर पर एक हल्की सी चपत देती हुई भाबी बोली, "अरे तुम तो अब वकील हो। ऐसे कैसे चलेगा ? घर नाम की कोई चीज़ होनी चाहिए। यूं रेस्तरां और होटलों में मण्डराते रहना तुम्हें अच्छा लगता है क्या ? ... तुम्हारी शादी होगी और जरूर होगी। मैं देखूंगी तुम मुझे कैसे रोकते हो !"

नरेन मेरे कन्धे को सहलाता हुआ बोला, "तुम्हें प्यार चाहिए भइया मेरे, तुम भटक गए हुए हो। प्यार पाने के लिए तुम अन्धेरे में टकराते रहे हो। वे घाव अभी तक भरे नहीं। किसी कोमल हृदय का प्यार तेरे सब खुला भर देगा। और दूसरे, अपनी भाबी की बात टालोगे ?" जभी मैं ने भाबी की आंखों में देखा, उनकी आंखें स्वाभिमान और विश्वास से मुस्करा रही थीं।

विनोद घुटनों के बल रेंगता हुआ भाबी के पास आकर उनकी साड़ी का आंचल खींचने लगा। मैं ने उसे उठाकर गोद में बैठा लिया। फिर उसके बालों को सहलाते हुए उसे दो एक बार चूमा। भाबी मेरी ओर देख रही थी। मैं बोला, "भाबी, मैं कभी २ विनोद में अपने भविष्य की सभी कल्पनाएं साकार होती देखता हूँ। हमारे जीवन में बहुत कमियां रही हैं, उन सब की पूर्ति विनोद के जीवन में देखेंगे। यह भी क्या याद करेगा – मेरा बचपन किन गोदों में बीता है !"

"हमारे मां बाप ने भी ऐसे ही सोचा होगा," विनोद के फ़राक की सलवटें सहलाता हुआ नरेन बोला, "लेकिन हमें अपने जीवन में कमियां महसूस हो रही हैं, ऐसे ही बड़ा होकर विनोद भी सोचेगा।"

भाबी विनोद को मेरी गोद से लेती हुई बोली,

"इस पैंतरे बाजी से काम नहीं चलेगा। मेरा कहा होगा ही।"

"अच्छा छोड़ो, जैसे कहोगी हो जाएगा, उठकर चाय बनवाओ।" भाबी के गले पर हाथ फेरते हुए नरेन ने कहा। भाबी शर्माती हुई मेरी ओर देख कर चुप रही, और उठकर बाहर को चल दी।"

फिर एक जोर की आंधी उठी और मेरी दुनिया को उस ने अपनी लपेट में ले लिया। मौत के ठण्डे हाथों ने नरेन को अपनी जकड़ में कस लिया। मैं कई रोज बावलों की तरह वीरान सड़कों पर भटकता रहा। नरेन को देख कर मैं अपने सारे ग़म भूल जाया करता था। अब उस के न होने भर का ग़म ही सब ग़मों को निग़ल गया है। भाबी रोज आती। पास बैठकर घंटों दिलासे देती रहती। आज सोचता हूँ—भाबी ने कितनी बड़ी चट्टान सीने पर धर ली होगी। केवल डेढ़ दो साल पुरानी मांग थी जिसका सिन्धूर क्षण भर में झड़ गया।

भाबी ने नरेन की मृत्यु के नौ दस महीने बाद अपनी प्रेक्टेस आरम्भ कर दी। मैं ने बहुत रोका। लेकिन बोली, "तुम्हारी प्रेक्टेस कौन सी बहुत चल निकली है जो अपना सारा बोझ तुम्हीं पर डाल दूं। ऐसी बात होती तो मैं प्रेक्टेस की कभी सोचती भी न, अरे हां, एक काम करो। आज शाम को वह मकान छोड़ दो और अपना सामान मेरे हां पहुंचा दो।"

मैं ने बहुत तर्क वितर्क के उपरान्त भाबी को मना लिया कि मेरा अलग रहना ही ठीक है। नर्स सुबह आकर विनोद को मेरे पास छोड़ जाती है। मैं कचहरी जाते समय उसे डिस्पेंसरी छोड़ जाता हूँ।

आज नरेन को दुनिया से गए साढ़े तीन-चार साल हो गए हैं। विनोद की शकल नरेन से बहुत मिलती है। मैं सोचता हूँ कब विनोद पच्चीस वर्ष का होगा और मेरा नरेन मेरे पास लौट आएगा। मैं विनोद के उस दिन की दिलोजान से प्रतीक्षा कर रहा हूँ जिस में मेरा दिन छुपा है, जिस दिन मेरा नरेन मुझे पुकार कर कहेगा—पगले रोते क्यों हो, मैं लौट आया हूँ, देख तेरे सामने तो खड़ा हूँ। मेरे चेहरे की लकीरें उस दिन मुस्करा उठेंगी, मेरी रूठी जवानी लौट आएगी।

आज साढ़े दस बज गए। विनोद की इन्तज़ार करता रहा। उस की सूरत देखने को तरसता रहा और चाहता ही रहा कि विनोद आए और उसे

छाती से कसकर अपना दर्द उंडेल दूं—'नरेन ! मेरे सिर पर एक ज़ोर का हिथौड़ा दे मारो ताकि भेजा फूट जाए।' तभी दरवाज़े पर दस्तक मिली। मुंशी आ गया था। मैं ने उसे कह दिया कि आज तबीयत ख़राब है, कचहरी नहीं आ सकूंगा और उसे सारा काम समझा दिया। कुछ मुकद्दमों की तारीखें ले लेने को कहा और कुछ के लिए केवल किशोर एडवोकेट के नाम एक पत्र लिख दिया कि वह मेरा आज का काम भुकता दे। इस सब से निपटकर मैं ने मुंशी को डिस्पेंसरी भेजा ताकि देख आए कि भाबी डिस्पेंसरी पहुंच गई हैं क्या ? थोड़ी देर में मुंशी लौट आया। उस ने बताया कि डिस्पेंसरी खुली है। नर्स और कम्पाउडर वहीं थीं। उन्हों ने बताया कि डा० साहिबा आज डिस्पेंसरी नहीं आएंगी। मुंशी बता कर कचहरी को चला गया।

मैं उठा और दरवाज़ा बन्द कर उसी कुर्ते पायजामे में भाभी के घर की ओर चल पड़ा। चलते २ मैं कई कुछ ऊटपटांग सोचता जा रहा था। गली के मोड़ पर दो लड़कियां मिलीं। वे पीछे से आकर तुरन्त आगे निकल गईं। पास से गुज़रने पर आगे जाकर मुंह में ओढ़नी का आंचल दबा कर हंसती मालूम हुईं। उन की हंसी जैसे मेरे रोम २ को जला गई। वे दोनों भाबी के पड़ोस में रहने वाली 'देवियां' थीं। अपने इस छोटे से जीवन में मैं ने बहुत जवानियां मचलती देखी हैं, अट्टहास करती देखी हैं; बहुतों को अपनी क़ीमत पर हंसाया है, खुद भले ही सुलगता रहा हूँ। लेकिन उन दोनों लड़कियों की हंसी मुझे झुलसा गई।

भाबी के हां पहुंचा। दरवाज़ा बन्द था, पर सांकल नहीं लगी थी। मैं ने दरवाज़ा खोलकर ड्योढ़ी में क़दम रखा। ड्योढ़ी में खड़े २ मैं ने अन्दर नज़र दौडाई। आंगन के पार बराम्दे में धूप थी और भाबी आराम से कुर्सी पर नीचे की ओर झुकी बाल सुखा रही थी। साथ ही साथ कोई किताब घुटनों पर रख कर पढ़ रही थी। सामने तिपाई पर पांव रखे हुए थे और सफ़ेद रेशमी साढ़ी का आंचल ज़मीन को छू रहा था। भाबी के लम्बे २ बाल ज़मीन तक

पहुंच रहे थे। बालों के नीचे कुर्सी की पीठ पर सफ़ेद तौलिया लटक रहा था। मेरी ओर भाबी की लगभग पीठ थी। दबे पांव आंगन में जाकर मैं ने इधर उधर देखा। समूचे घर पर एक अजीब छाया मण्डरा रही थी। दायीं ओर रसोईघर में माई खाना तैयार कर रही थी। आँगन के एक ओर कोने में विनोद फ़र्श पर बैठा पानी के टब से खेल रहा था। मैं सामने भाबी की ओर बढ़ गया। भाबी की पीठ की ओर ही खड़े २ मैं ने पुकारा "भाबी !... " भाबी ज़रा चौंकी। सिर घुमा कर उठते हुए भाबी ने मेरी ओर देखा, "ओ हो...आओ बैठो ! ...अरे क्या हुआ ? रो क्यों रहे हो ?... " भाबी ने मुझे बांह से पकड़ा और अन्दर ले गईं। पर्दा दरवाज़े के आगे कर दिया। विनोद अपने खेल में मस्त था। अन्दर चारपाई पर बैठाकर भाबी पास बैठ गईं। मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोली, "क्यों जी हल्का करते रहते हो ! इतने बड़े हो गए, वकील बन गए, अभी तक बच्चों की तरह सुबकना नहीं छूटा।" भाबी की बातचीत में किसी प्रकार का अन्तर नहीं था।

"भाबी ! ..."

"पगला !" और भाबी ने मेरे बालों को आहिस्ता से झटक दिया।

"भाबी, लोगों की ज़बान पर जो कुछ है, वह सब बकवास है ? " सुनकर भाबी गम्भीर हो गई। भाबी ने गर्दन पर लटके अधसूखे बालों पर से साड़ी का आंचल दूसरे कन्धे पर सहेजा। फिर एक ज़ोर की सांस लेते हुए बोलीं, "तुम नहीं समझोगे ! मैं तुम्हारे दोस्त की बीवी हूँ, तुम्हारी भाबी हूँ, विनोद की मां हूँ। लेकिन मूलतः मैं क्या हूँ ? मैं जानती हूँ कि तुमने यह जानने का प्रयत्न नहीं किया। हम जीवन के गहरे में रहकर भी सतह पर रहते हैं। अपनी लीक चलते जाते हैं। कभी यह जानने का प्रयत्न नहीं करते कि साथ की पगडण्डी पर चलने वाला राही उस पगडण्डी को क्यों पकड़े है।"

"लेकिन भाबी, मैं ने तो कुछ और पूछा था !"...सुना तो भाबी की आंखों के डोरे कुछ भीग से गए। एक बार मेरी ओर विस्फारित आंखों से

देखा और बोली, "बकवास नहीं, ठीक है।...और...और आज तुम्हारे सामने नंगी हो गई हूँ तो कुछ नहीं छिपाऊंगी। तुम्हें यह सुन कर दुःख होगा कि जाने अपने कल्पनालोक में मैं ने कितनी बार तुम से आलिंगन किया है। आलिंगन तो वैसे भी कर लेती हूँ। लेकिन इस और उस आलिंगन में बहुत बड़ा अन्तर है। उस में एक प्यास की तृप्ति खोजती रही हूँ। ऐसे में मैं ने तुम्हारे माथे की एक २ शिकन चूमी है, ओठों की तिर २ को चूसा है...और ..." भाबी हाँफने लगीं। साड़ी का आंचल चारपाई पर गिर गया था। सीने में धड़कन तेज हो गई; आंखें लाल हो गईं, जिन पर आंसू झिलमिला रहे थे... "और जाने कितनी बार मैं ने तुम्हारे रोम २ को चाहा, समूचे तुम्हें चाहा..."

भाबी ने साड़ी के आंचल से आंखें पोंछीं और अनमने भाव से साड़ी की सलवटें सहलाने लगीं।

"लेकिन भाबी, मेरी नहीं, नरेन के नाम की नहीं, विनोद की ही चिन्ता की होती। वह बड़ा होगा, दुनियां में जाएगा। यदि दुनिया ने एक बार भी उसे कनखियों से देखा तो उस का क्या हाल होगा? उस में नरेन का खून भी है भाबी, विनोद को बहुत अच्छा माहौल चाहिए। जो उसे नहीं मिल रहा। वर्ना जीवन भर उसकी आत्मा हम पर लानत भेजती रहेगी। अभी विनोद बच्चा है, उसे इस भयानक साये से बचा लो भाबी!..." किसी ने खटाक से दरवाजा खटकाया।

"अंकल!" और विनोद पर्दे को उछालता हुआ मेरी गोद में आ बैठा।

"मेरी कश्ती डूब गई अंकल..."

मेरी ठोड़ी को अपने हाथ से हिलाते हुए विनोद ने कहा।

"बाहर जाकर दालान में देखो, दूसरी पड़ी होगी।"

भाबी ने विनोद को रूखे स्वर में कहा। विनोद ने टुक भाबी की ओर देखा और बोला, "चलो अंकल बाहर दिखाऊं!" और गोद से उतर कर मेरा

हाथ खींचने लगा। मैं ने उसे पुन: गोद में उठा लिया और बाहर दालान की ओर चल दिया। टब के पास जाकर विनोद गोद से उतरा और टब में पड़ी कश्ती को निकाल कर मुझे दिखाने लगा। कश्ती गल गई थी। विनोद के खींचने से फट गई।

"अरे यह काग़ज़ की है ना, इसी से डूब जाती है। यह तो गल भी जाती है। तुम्हें बाज़ार से लकड़ी की ला दूंगा। वह न गलेगी, न फटेगी।"

"अभी लाकर दो।"

"चलो ले देता हूँ।" मैं विनोद को अंगुली से पकड़ कर ड्योढ़ी की ओर चल दिया। भाबी को मैं ने विदा कही और बता दिया कि विनोद मेरे पास है, चिन्ता न करे। मैं ड्योढ़ी की दहलीज़ तक पहुंचा कि भाबी ने पीछे से पुकारा और पास आकर कन्धे पर मेरे कुर्ते को अपने नाखुन से कुरेदती हुई बोली,

"भइया !...मेरे सम्बन्ध में कुछ भी सोचने से पहले इतना जान लिया करो कि मैं औरत पहले हूँ, मां बाद में..."

समय की बांहें

दीनानगर स्टेशन पर गाड़ी रुकी।

गाड़ी के दूसरा सिगनल पार करते ही मैं दरवाज़े के सींख़चों को पकड़ कर खड़ा हो गया था। प्लैटफ़ार्म पर लाल पीले हरे सफ़ेद नीले रंग का भारी हजूम खड़ा था। कोई किसी को विदा कहने आया था, कोई किसी को लेने। किसी का प्रगाढ़ आलिंगन जुदाई का दर्द लिए था तो कोई किसी बिछुड़े अपने को छाती की कसन दे रहा था। एक की आँखों में विरह के आँसू उमड़ आए थे, दूसरे के नयन-कोर मिलन की उमंग से भीग गए थे। दो नव वधुएँ अलग २ जमघट से घिरी सिसक रही थीं। जान पड़ता था एक मायके आई है, दूसरी ससुराल जा रही है। प्लैटफ़ार्म विरह मिलन के आँसुओं का संगम बना हुआ था। उस हजूम को टटोलती हुई मेरी निगाहें तैर २ जाती थीं। मेरी आँखें जिस अपने को खोज रही थीं, वह कहीं दिखाई न दिया। गाड़ी खड़ी होने पर नीचे उतर कर मैं ने पुनः एक बार अच्छी तरह से इधर उधर दृष्टि दौड़ाई। निराश होकर मैं ने अपना असबाब ट्रंक और बिस्तर, गाड़ी से निकाल लिया। बिस्तर उठाकर मैं ने ट्रंक पर रखा और इधर उधर घूम कर किसी क़ुली को ढूंडने लगा, क्योंकि सामान कुछ भारी था; एक बार में उठाना कठिन था। वहाँ कोई परिचित था नहीं कि उसे एक नग की रखवाली के लिए कहता और दूसरा ठिकाने लगा कर फिर उसे

ले जाता। जब कोई चारा दिखाई न दिया तो अपने को तसल्ली दे लेनी चाही—इन्सान पर से विश्वास उठना, जिन्दगी में गहरे अविश्वास को जगह देना है। प्लैटफ़ार्म से बाहर मंगतराम हलवाई की दूकान पर छोड़ आने के लिए मैं ने बिस्तर को हाथ डाला कि पीछे से किसी ने आकर मेरा कन्धा थपका, 'मास्टर!" मैं झट से बिस्तर छोड़कर उधर घूमा और नेक ने मुझे अपनी बांहों में बाँध घेरा। जिस अपने की सूरत गाड़ी के हिचकोलों के साथ मेरे दिमाग़ में आ आकर हिचकोले दे रही थी, उसकी बांहों की कसन ढीली करते हुए मैं ने कहा, "बहुत ज़ालिम हो नेक! मेरा तो दिल टूट गया था।"

"मैं ने फाटक के परे से गाड़ी के आने की आवाज़ सुन ली थी और वहीं से भागता आया हूँ। मैं जानता था कि तुम परेशान हो जाओगे। खर, चलो चलें।" कहकर नेक ने बिस्तर की रस्सी को हाथ डाल लिया।

"लेकिन भारी है यह सामान," मैं ने कहा, "बाहर मंगतराम की दूकान पर रख देते हैं। गाँव से किसी को भेज देंगे, आकर ले जाए गा।"

नेक ट्रंक को हिलाकर बोला, "भारी कहाँ है यह, बारी २ उठाते जाएँगे।"

"नहीं नेक, सामान रख देते हैं। खुद मज़े में टहलते बातें करते जाएँगे।" उसके बाद ट्रंक को एक कुण्डे से उस ने और दूसरे से मैं ने पकड़ कर बाहर निकाला। बिस्तर ट्रंक पर रखा हुआ था ही।

मंगतराम दूकान के अन्दर कड़ाही के पास बैठा दूध गरम कर रहा था। हमें देखते ही वह उठकर बाहर आ गया—" नमस्ते बाऊ जी, बहुत देर के बाद आए, क्या हाल चाल है?" और मंगतराम ने बरतन साफ़ कर रहे एक नौकर को कहा, "उठो हाथ साफ़ कर के बाऊ जी के लिए लस्सी बनाओ। आध सेर दही डाल लेना। और कहिए बाऊजी, प्रसन्न तो रहे ना?"

"तेरी दुआ से सब ठीक है। यह हमारा सामान रख लेना। शाम को गाँव से कोई आदमी आकर ले जाएगा।"

"यहीं रहने दीजिए, मैं अन्दर रखवा लूंगा।" और दूकान के सामने पड़े लकड़ी के बेंच को झाड़ कर उसने हमें बैठ जाने को कहा। मंगतराम का नौकर लस्सी बनाने के लिए गड़वी साफ़ कर रहा था। लस्सी पीने का मन न था। मैं ने मंगतराम को लस्सी बनाने के लिए मना किया। वह बोला, "क्या बात है बाऊ जी, शहर में रहकर चाय के आदी हो गए हैं क्या?"

"नहीं भैया, ऐसी तो कोई बात नहीं। वैसे ही प्यास नहीं।"

"फिर तो ज़रूर पिलाऊंगा। पंजाब की यही तो एक चीज़ है। इस का निरादर करके भला हमारा ठिकाना कहाँ है?" फिर कड़ाही के पास कुछ खोजता हुआ बोला, "बाऊजी, चाय की ऐसी लत्त पड़ी है लोगों को कि लस्सी दूध उन्हों ने छोड़ ही दिया है। मैं पियूं तो नाक से खून बहने लग जाता है। सीधी जाकर कलेजे को लगती है...।"

"अच्छा भई बनाओ फिर, तुम्हें नाराज़ थोड़े ही करेंगे।"

तीन पाव वाले दो बड़े गिलास मंगतराम ने हमारे आगे रख दिए। "कलाकन्द भी लेंगे? अभी २ बना कर हटा हूँ। खोआ ही खोआ है। खाँड बहुत कम डाली है।"

"नहीं भाई, यह लस्सी कम है क्या? बहुत देर के बाद पी रहा हूँ, पता नहीं क्या रंग लाती है!"

"लालरंग लाएगी बाबूजी, यह तो हम पंजाबियों की जान है। सुना बाहर एक छटांक दही के चार गिलास बनाते हैं। तभी तो उनकी जानें देखने वाली हैं! पता नहीं उनकी जान किस अंगुली में अटकी रहती है।" कहकर मंगतराम पंजाबी हँसी हँस दिया। हम ने लस्सी पी ली। नेक तहमद से मुँह पोंछता हुआ बोला, "चलो मास्टर, देर हो रही है, थोड़ी देर बाज़ार में भी काम है।"

"चलो!" कहकर मैं न मंगतराम को सामान अन्दर रख लेने का कहा और हम बाज़ार की ओर चल दिए।

आज नेक कोरे लट्ठे का तहमद, नीली पॉपलिन की कमीज़ और पांव में तेल से चुपड़ी जूती पहने था, जिस पर मिट्टी की मोटी तह जमी हुई थी। सिर में तेल लगाया हुआ था, लेकिन कंघी न की होने के कारण उसके बाल इधर उधर बिखरे हुए थे। माथे पर भी तेल चमक रहा था। दाढ़ी आज की मुण्डी हुई थी, जिसमें कुछेक खूँटियाँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। गले में काले रेशमी धागे में पिरोया हुआ चाँदी का तावीज़ लटक रहा था, जो शायद उस ने किसी बिसाखी के मेले पर खरीदा था। उसकी नई फूटी मूछों को भी तेल का स्पर्श मात्र मिला हुआ था, इसी से वे मुलायम और भलमानसी से शान्त थीं। वर्ना नेक अपनी आदत के अनुसार उन्हें मरोड़ मरोड़कर उनमें क्रान्ति पैदा करता रहता था।

"बाज़ार से कुछ लेना है क्या ?" चलते चलते मैं ने पूछा। "इतनी देर के बाद शहर आया हूँ। कुछ न कुछ ले ही चलूँगा ना !" कहकर नेक अपने तहमद पर से मिट्टी झाड़ने लगा।

दीनानगर का बाज़ार शहर के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक शहर के मध्य में चला जाता है, जैसे उस नगरी के तन पर कोई रेखा चित्रित कर दी गई हो। बाज़ार की दोनों ओर से गलियाँ छूटती जाती हैं। नीचे फ़र्श ईंटों का बना हुआ है। फर्श की ईंटें उभरी-दबी हुई हैं। दीनानगर पुरानी नगरी है, जिसने कई बादशाहियों के उतार चढ़ाव देखे हैं।

बाज़ार में नेक ने कुछेक दूकानें देखी। लेकिन उसे अपने मतलब की चीज़ न मिली। उसके बाद वह मुझे लेकर तारागढ़ी दरवाज़े की ओर चल दिया। वहां एक दूकान से उस ने एक घंघरेल और एक बेंत का रस्सा खरीदा।

"सन के रस्से बहुत जल्दी घिस जाते हैं। और मेरी घंघरेल के कुछ घुंघरू गुम हो गए हैं। मैं ने सोचा — नई ही ले चलते हैं। पुरानी बछड़े के काम आ जाएगी। यह नई गोरे बैल की गरदन पर बहुत सजेगी मास्टर !" कहकर नेक प्रसन्न होता हुआ मेरी ओर देखने लगा। उस ने रस्सा इकट्ठा कर

के बग़ल में दबा लिया और दाहिने हाथ में घंघरेल पकड़ कर वापस लौट पड़ा

फाटक से मुड़ कर हम रेल की पटरी २ गांव को चले जा रहे थे। धूप बहुत तेज़ थी और हम नंगे सिर। रस्से को बग़ल में ठीक करता हुआ नेक बोला, "मास्टर ! तुम ने तो अपना देस ऐसा छोड़ा कि लौटने का नाम ही नहीं लेते। कुछ मिल गया है वहां क्या ? "

"मिलेगा वहां क्या नेक, रोजगार के लिए घर छोड़ा है। वर्ना अपने घर सा आराम कहां नसीब होता है ? सैंकड़ों मील दूर होते हुए भी मन मस्तिष्क इधर ही लगा रहता है। . . . . यहां जैसी प्यार की गरमाइश वहां दिखाई नहीं देती यार, वहां अपने आप को उखड़ा २ महसूस करता हूँ। . . . . उन लोगों में भीग नहीं पाता। उनका लहू और ही रंग का है नेक ! उनके सोचने और जीवन यापन का ढंग ही और है।" फिर कुछ ध्यान से मेरी ओर देख कर नेक बोला, "मास्टर, दुबले हुए दिखाई पड़ते हो। क्या करते रहे हो वहां ? पिछली बार आए तो अच्छे भले थे ! "

"तुझे बता तो चुका हूँ कि वहां जी नहीं लगता। अपना गांव बहुत याद आता है। लहलहाते सरसों के खेतों का खुला विस्तार, सांझ ढले घरों से उठती सरसों के साग की महक, लोरियां, सुहाग, टप्पे गाती मुटियारों की नशीली आवाज़ें, नोमनी के तीर— यह सब कुछ मुझ से छिन गया है। शहर की तंग गलियों की घुटन, उन गलियों में रहने वालों के मन की घुटन, दिखाई देता है मुझे एक दिन ले डूबेगी। . . . . नेक, गंदगी कहां नहीं है ? सब कहीं है। हमारे गांव में भी है, हमारे घरों में भी है— और बहुत है। लेकिन वहाँ शहर की गन्दगी की गन्ध में ज़हर मिला हुआ है। नेक वहां इन्सान में इन्सान के लिए कोई दर्द नहीं। कोई सहानुभूति नहीं। सभी अपने में सिमट कर जीवन बिता रहे हैं। एक घर शहनाई बज रही है तो पड़ोस में दूसरे घर से जनाज़ा निकल रहा है। नेक जानते हो, जनाज़े का कफ़न पास से फहराता हुआ निकल जाएगा, शहनाई बजती रहेगी। एक मकान में रहने वाले चार

घराने अलग २ रस्सी से बिंधे हुए हैं। नेक यार तुम खुशनसीब हो जो खुला जीवन बिता रहे हो।" नेक ज़रा हलकेपन में आता हुआ बोला, "छोड़ो मास्टर तुम्हारी बातें हमेशा ऐसी ही रहेंगी। पता नहीं क्या २ दिमाग़ में बसा रखते हो। कुछ अपनी कहो!"

"यह कौनसी पराई है? . . . नेक तुम्हें कितनी बार कहा मुझे मास्टर कहना छोड़ दो। सीधा नाम अच्छा नहीं लगता तो बात अलग है!"

"ऐसी तो कोई बात नहीं भापे, पर तेरा क्या बिगड़ता है? मैं खुश हो लेता हूँ!" ठीक बात भी यही है। नेक के इस तर्क के आगे मैं कुछ बोल नहीं पाता। यह तर्क भावना से भीगा हुआ है। भावना का गला घोंटना मेरे वश की बात नहीं। यदि नेक इतने भर से खुश हो लेता है तो उसे नाराज़ करने का मुझे कोई कारण नहीं सूझता। लेकिन यह तो बीते के ढर्रे पर खड़ा एक शब्द है जिसके साथ हमारे बचपन की बचकानी कामनायें गुन्थी हुई हैं।

शायद हम दोनों अपने गांव की पाठशाला में तीसरे दर्जे में पढ़ते थे। हमारी कक्षा पाठशाला के साथ एक मन्दिर के आंगन में बैठती थी। मन्दिर के आंगन में पीपल का एक विशाल वृक्ष था। गर्मियों में पीपल की छांव में और सर्दियों में मन्दिर के बराम्दे में कक्षा की पढ़ाई चलती थी। बराम्दे के साथ एक छोटा सा कमरा था जो टाट, मास्टर की मेज़-कुर्सी तथा अन्य सामान रखने के काम आता था। अधेड़ अवस्था के मास्टर कांशीराम हमें पढ़ाया करते थे। मास्टर जी के चेहरे पर मुस्कराहट कभी २ ही दिखाई देती थी। वर्ना प्रायः उनके माथे पर तेवर बने रहते थे। गोल शीशों का चांदी के फ्रेम का चश्मा लगाते थे। दाढ़ी शायद सप्ताह में एक बार मुण्डवाते थे। कक्षा को पढ़ाते समय प्रायः बायें हाथ से वे दाढ़ी खुजलाते रहते थे। सबक़ में भूल अथवा किसी शरारत पर थप्पड़ों तथा छड़ियों से खूब पीटते थे। छड़ी उन की प्रायः शीशम की बनी होती थी। एक बार नेक ने किसी सहपाठी की दावात अपनी दावात में उण्डेल ली, क्योंकि उस सहपाठी की दावात की स्याही प्रायः

गाढ़ी होती थी। सहपाठी को पता लगा तो उस न जाकर मास्टर जी से शिकायत कर दी। नेक का पहले तो पन्द्रह मिनट के लिए कान पकड़वा कर मोर बनाया गया। फिर छड़ियों तथा तख्तियों से पिटाई हुई। छुट्टी हुई और सब लड़के घरों को चले गए। नेक को शेष दण्ड के तौर पर टाट झाड़कर अन्दर रखने की आज्ञा मिली। मैं भी उसकी सहायता के लिए छुट्टी के बाद वहाँ ठहर गया। हमने अपने बस्ते मन्दिर के थड़े पर रखे और टाट झाड़ने लगे। टाट झाड़कर अन्दर रख कर हम अपने बस्ते सलीक़े से बांधने के लिए थड़े पर बैठ गए। बस्ते को गांठ देता २ नेक रुका और मुझ से बोला, "यार जिन्दगी में पढ़ाई नसीब हुई, तो बड़े होकर मास्टर बनेंगे। अपनी मारों का बदला गिन २ कर लेंगे। किस बेरहमी से मारा है माई...ने। मरेगा तो पांच पैसे का 'परशाद' चढ़ाऊंगा।" और नेक अपनी हथेलियों पर छड़ियों के निशान देखने लगा। मैं ने नेक की आंखों में देखा। उसका कलेजा उमड़कर गले में आ गया था। उस ने एक खाली घूंट भर कर कलेजे को अपनी जगह पहुंचाने का प्रयास किया। मैं ने नेक को बस्ता बांधकर घर चलने को कहा।

उसके एक साल बाद ही प्राइमरी पास कर लेने पर नेक के बापू ने उसे स्कूल से हटा लिया ताकि खेती के काम में सहायक हो सके। उस के बापू ने सोचा था कि यदि चार घुमाओं ज़मीन भी नेक अपनी हल तले रख सकेगा तो काफ़ी है। कुछ न कुछ हालत तो घर की सुधरेगी ही। नेक को ज़िन्दगी में पढ़ाई नसीब न हुई, मैं ने पढ़ाई जारी रखी। मुझे ऐसी कोई मजबूरी नहीं थी। नेक एक मजदूर किसान का बेटा था। उस का बाप किसी की ज़मीन पर हल चलाता था। ज़मीन की आधी उपज नेक के बापू के पल्ले पड़ती थी, जिस से घर का आटा नमक चल जाता था। बाक़ी आधा जो नेक की पढ़ाई का निमित्त हो सकता था, ज़मींदार के घर चला जाता था, जिस से ज़मींदार की धौंस और प्रतिष्ठा क़ायम रहती। नेक के बापू जैसे कई मजदूर-किसान उस ज़मींदार के अधीन खेती करते थे। हमारी ज़मीन की समूची

उपज हमारे पास रहती थी। मेरी पढ़ाई के काम आने वाला हिस्सा छीनने वाला कोई नहीं था। इस तरह मेरी और नेक की स्थिति में बहुत अन्तर था। उन्हीं दिनों एक दिन मैं ज़िला के हाई स्कूल के बोर्डिंग से छुट्टियों में गांव आया तो नेक ने मेरा यह नामकरण संस्कार कर दिया। तब से वह मुझे मास्टर ही कहता है।

"लेकिन अब तो मास्टर कांशीराम बूढ़ा हो चुका है नेक! इस उमर में उस से क्या बदला लेंगे।"

'मास्टर, वह तो लड़कपन की बातें थीं: लड़कपन के साथ ही चली गईं। तुम अब तक भूले नहीं।"

"अरे यार तुम ने तो भगवान् के मन्दिर के थड़े पर बैठ कर प्रण किया था!"

"थड़े पर ही बैठे थे ना। भगवान तो मन्दिर के अन्दर रहता है।" कह कर नेक अल्हड़ से अन्दाज़ में हँस दिया। फिर बोला। "और अब तो मास्टर कांशीराम की ज़िन्दगी मौत से भी बुरी है यार, तीन साल से बीमार है। सूख कर काई हो गया है। चला जाता नहीं उस से। तुम उस से मिले नहीं ना कभी! मैं कभी २ जाकर उसके हां आटा, बालन, दे आता हूं। मास्टर, आज जाकर उस से जरूर मिलना। तुम्हें देख कर फूला नहीं समाए गा। मुझ से तेरे सम्बन्ध में कई बार पूछ चुका है। . . . बहुत बुरी हालत है यार उसकी, खांसता है तो प्राण कांप उठते हैं। दो जवान लड़कियां सिर पर हैं। उसे तो उनकी चिन्ता ही खाए जा रही है। मुझे उस ने दो एक बार कहा भी है— 'नेक! रानो और शीला के हाथ पीले कर लूं तो मेरी क्या है? मेरे बाद इन बेचारियों का क्या होगा? . . .' नौकरी के वक्त का कुछ जमा किया होगा जो चल रहा है। मैं सोचता हूं मास्टर वह भी कितना होगा? उन दिनों उसे पैंतालीस मिलते थे शायद! तो देख लो उन में नंगी नहाएगी क्या और नचोड़ेगी क्या? चिन्ता से बढ़कर कोई रोग नहीं मास्टर, यह अन्दर ही अन्दर

घोलती रहती है . . . ।"

"रानो, शीला दोनों बड़ी समझदार लड़कियां हैं। उनके लिए तो बहुत दिक्कत पेश नहीं आनी चाहिए।"

"मास्टर समझ तो कौड़ी के मोल बिकती है। पैसा नहीं तो समझ अकेली क्या करेगी ?"

अब हम नहर के सुए की पटरी पटरी चल रहे थे। सुए के दोनों कूलों पर हरी घास थी जिनकी तिनों को दुलारता हुआ पानी बहता चला जा रहा था। शीशम का एक छायादार पेड़ देखकर मैं हरी घास पर बैठ गया। नेक छलांग लगा कर सुआ पार कर दूसरे किनारे बैठ गया। जूती उतार उस ने टांगें पानी में लटका लीं।

"नेक अब तो सरकार ने उपज में ज़मींदार का तीसरा हिस्सा कर दिया है। अब तो गांव वाले खुश होंगे ?"

"तुम भी शहरी बातें करने लगे हो मास्टर," नेक जूती को घास पर पोंछता हुआ बोला, "ज़मींदार की जड़ें बहुत गहरे में हैं। आसानी से खोदी नहीं जा सकतीं। तीसरे हिस्से की बात ज़बान पर लाओ तो ज़मीन से ही जवाब मिल जाता है। परसराम से ज़मीन छूट ही गई है ना। . . . मास्टर क़ानून उसका है, जिसके, क़ानून वाले हैं। यहां ज़मींदार का डंडा ही क़ानून है। ... चलो मास्टर, 'नोमनी' में पानी चढ़ा हुआ है!" नेक ने जूती इस पार फैंकी और छलांग लगा कर जूती घसीटता हुआ चल पड़ा। बातों २ में पता ही न चला कि हम कितना रास्ता तै कर आए हैं। सुए का फाटक आया तो हम ने जाना कि आधे में आ चुके हैं। सुए की दोनों ओर खुला विस्तार था। दूर २ तक धान के खेत लहलहा रहे थे और हम सुए के किनारे २ हरी घास पर चले जा रहे थे। ऊपर आकाश पर कड़कती धूप थी लेकिन अब बादल की एक टुकड़ी सूर्य के सामने आ जाने से मौसम कुछ सुहाना हो गया था। मैं ने नेक के दाहिने कन्धे पर हाथ पटकते हुए कहा," क्या अब भी तुम लोग ज़मींदार को

आधा ही देते हो ?"

"दें न तो भूखे मरें !"

"क्यों देते हो, वह क़ानूनन ले नहीं सकता। लेकिन तुम हिम्मत खो बैठे हो। एक ज़बान हो कर चिल्ला भी नहीं सकते। दुनिया भर में इन्सान मात्र जाग उठा है। अपना अधिकार पाने के लिए इन्सान की मुट्ठी तन गई है लेकिन तुम हो कि अपना अधिकार मांग तक नहीं सकते।"

"मास्टर तन जाएं तो पता क्या होगा? ... अब तो ज़मींदार के तेवर ही देखते हैं, फिर पौलीस के छित्तर और डंडे बरसेंगे। पौलीस की मार बहुत बुरी है भापे। बरसों तक उठने नहीं देती।" नेक मेरी ओर घूम कर बोला, "जितनी मिल रही है ठीक है। सारी के लालच में कहीं आधी भी न जाती रहे। फिर, अपने पुरखे कौनसे राजा थे, जो कि राज हम से छिन गया है।"

सुए का पानी गदला था, लेकिन प्यास बहुत लगी हुई थी। मैं झुक कर सुए का पानी पीने लगा। नेक ने कहा कि आग चल कर बाग़ के कुएं से पी लेंगे। लेकिन प्यास तो उस समय पानी मांग रही थी। मैं ने भरकर पानी पिया और मुंह पोंछते हुए नेक के पास चला आया। नेक भी सुए की ओर मुड़ा। लेकिन उस ने पानी नहीं पिया, मुंह धो कर लौट आया।

मन ठंडा हो गया था। दूर क्षितिज पर से घटाएं उठ उठ कर झांक रही थीं। हवा चलने लगी थी। लेकिन इतनी कि धूल के बगूले न उड़ सकें। वायु के उस चलन से धान के खेतों में खड़े पानी में फ़सल का प्रतिबिम्ब झिलमिल २ कर रहा था। मैं ने नेक को कोहनी से हिलाते हुए कहा, "कम-बख़्त बांसुरी नहीं लाए ? ऐसे में कितनी अच्छी लगती।" मुझे याद है बैसाखी के मेले पर जब कभी नेक बांसुरी बजाने लगता तो सुनने वालों का हजूम इकट्ठा हो जाता था। मेले में इकट्ठी हुई मुटियारें एड़ियां उठा उठा कर उसकी ओर देखती थीं। हमारे गांव का अपना भंगड़ा नहीं था। बैसाखी से महीना २ पहिले आस पास के गांव वाले उसे अपने भंगड़े में शामिल होने के लिए कह

जाया करते थे। साल में वही एक दिन था जब नेक भी अपने को कुछ समझता था। उसकी आवाज़ भारी और बहुत साफ़ थी (आवाज़ का माधुर्य अब भी नष्ट नहीं हुआ है) भंगड़े में उस की बोली के समय सन्नाटा छा जाता था, और उसकी आवाज़ श्रोताओं के दिलों पर छा जाती थी। यदि मैं कभी उस मेले पर गांव रहूं, तो नेक बड़े मान के साथ आकर कहा करता कि फ़लां फ़लां भंगड़ों की ओर से निमंत्रण आया है जिस में कहो भाग लूंगा। यानि मुझे जताया करता था कि मैं भी लल्लू पंजू नहीं हूं, मेरी भी क़ीमत है। वह उस दिन अपनी क़ीमत जान पाता था। हीर, माहिया, मिर्ज़ा नेक बड़े शौक़ से गाया करता है।

मैं ने उसे कोई गीत गाने को कहा तो बोला, "सामने पुली पर बैठ कर सुनाता हूँ।"

"नहीं यार, चलने का मन है। चलते चलते ठीक है।" नेक ने अपने दाहिने कान के पास हाथ रखा और उसकी आवाज़ फ़ज़ा में गूंजने लगी—

दिलदार कमन्दां वाले दा
जिधरों दी तीर निशंग जांदा;
टुट जांदे ने मान जवानां दे
जिस रांह दी सोहना लंग जांदा—

इस गीत के बाद नेक ने दो एक गीत और सुनाए। उस की आवाज़ मुझे सदा भिगो देती रही है। मुझे याद है जब कभी खेतों की मण्डेरों पर घूमते नेक गा उठता था तो साग तोड़ती मुटियारें उठ उठ कर उस की ओर देखा करती थीं। नेक गाना समाप्त करके चुका ही था कि जाने क्यों मैं अनायास ही पूछ बैठा, "नक, यार वह तेरी पम्मो कैसी है?"

"बहुत अच्छी है मास्टर। . . . अपना तो सफ़ाया कर गई।" नेक ने मेरी ओर गहरी आंख से घूरा और लम्बी सांस लेता हुआ बोला, "अपना क्या है वह राज़ी रहे।" फिर कुछ देर के लिए वह दूर शून्य में देखता रहा।

मेरी धड़कनें आपस में उलझती जा रही थीं। मैं ने पूछा, "क्यों, क्या हुआ नेक ? . . ."

"होना क्या था ! वही हुआ जो होना चाहिए था और जिस होने को मैं भुलाए था। बेचारी मेरा पल्ला पकड़ती तो जीवन भर बगार देती रहती।" नेक के अन्तिम वाक्य से मैं सब कुछ समझ गया। लेकिन मैं सोचने लगा—पम्मो तो बड़ी अच्छी लड़की है। नेक के प्रति उस ने सदा वफ़ादारी का सबूत दिया है। नोमनी किनारे, घने बागों में, खलिहानों की ओट में आज तक वह दोनों अपने दिलों की धड़कनें गरमाते रहे हैं; अनायास पम्मो इतना कसे बदल सकी ? पम्मो तो गांव की एक मासूम सी लड़की थी। उस ने ये खिलवाड़ कहां से सीखे ? मैं ने नेक की ओर देखा। नेक पानी में आंखे गाड़े चला जा रहा था। उसकी आंखों की पलकें स्थिर सी हो गई थीं। मैं ने धीमे से नेक से पूछा। "यह सब कैसे हुआ भैया ?"

नेक ने तेज़ी से आंखें मेरी ओर घुमा लीं और बोला,

"औरत को प्यार के अतिरिक्त भी बहुत कुछ चाहिए। वह बहुत कुछ मैं कहां से जुटा पाता ? अब अच्छे बस्ते घर में गई है। मज़े में रहे गी। . . . उस ने बुरा नहीं किया मास्टर, वह सच्ची है। हर किसी को अपने जीवन की चिन्ता होती है। दूसरे मुझ में हिमम्त भी तो न थी कि अपने गांव की लड़की को घर डाल लेता। लोग फिर गांव में रहन देते भला। चोरी छिपे सब चल जाता है। कोई पूछता नहीं। भई औरत को जानना बहुत मुश्किल है।" थोड़ी देर रुक कर नेक तावीज़ पर हाथ फेरता हुआ बोला, "किसी को क्या दोष दें, अपने पास दो हाथ ज़मीन होती तो पम्मो भी अंगूठा क्यों दिखा जाती। अब तो भूत बन कर लोगों को चिपटेंगे मास्टर !" कहकर नेक एक ज़हरीली हँसी हँस दिया। उस के माथे की रेखाएं शिथिल पड़ गई थीं। आंखों के किनारे भीग २ कर सूख गए थे। आंखों के आस पास सूखे आँसुओं के निशान दिखाई दे रहे थे। उस ओर देख कर मुझे अपने पर शर्म आई कि

मुझ में और नेक में यह मौलिक अन्तर क्यों है ? मैं भी किसी अमीर खानदान से नहीं। मेरे हाथ भी कहीं बढ़ते बढ़ते रुक जाते हैं, सिकुड़ जाते हैं। मैं ने जो चाहा जिसे चाहा, वह मिला या नहीं– यह और बात है, पर चाहा तो है। और जी भर कर चाहा है। जिसे हम चाहते हैं, वह हमें मिलता ही कब है ? लेकिन नेक की तो बहुत बड़ी चाहतें नहीं। उसकी यह नन्ही २ चाहतें भी घुटघुट कर दम तोड़ रही है। ऐसे कई असंगत और क्रमहीन विचार आ आकर मेरे दिमाग़ में चक्कर काटते रहे। फिर उन सब विचारों को विद्युत रेखा की तरह चीरती हुई रूसो की एक पंक्ति मेरे दिमाग़ में कौंध आई— "बुराई का आरम्भ उस दिन हुआ, जिस दिन इन्सान ने पहली बार ज़मीन पर हाथ रख कर कहा था— यह मेरी है !" (The day, the frist man laid his hand on the land and said: this is mine ! began the evil.)

सुए की अन्तिम पुली आई और हम उस पर से सुआ पार कर गए। अब सुए की पटरी छोड़कर हम एक चौड़ी पगडण्डी पर चल रहे थे। वह पगडण्डी अजदहा की लीक की तरह खेतों के बीचो बीच चली जाकर नोमनी के तीर पर समाप्त हो जाती है। सूर्य ढल कर माथे पर आ गया था। क्षितिज से घटाएं और ऊपर उठ आई थीं। सूर्य बादल की टुकड़ियों से आंख मिचौली खेल रहा था। पगडण्डी पर चलते २ सहसा नेक बोला, "मास्टर, यार हम तो यूंहीं पीछे पड़े हैं। हमारे हाथ पर तो विवाह-रेखा डालना ही भगवान भूल गया है।" कहते २ नेक अपना हाथ आगे करके उसका निरीक्षण करने लगा।

"नेक, हम जैसों के हाथों पर तो वह कई रेखाएं खींचना भूल गया है। तुम एक की बात करते हो !"

फिर नेक झट से अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाता हुआ बोला, "अरे नहीं यार, अपना हाथ तो अनगिनत रेखाओं से भरा पड़ा है, और हैं भी बहुत गहरी। लेकिन कम्बख़त एक दूसरी से उलझ कर फूट गई हैं।"

मैंने नेक का हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर देखा। उसका हाथ कई बार देखा है, चूमा है, थामने की सकत मुझ में न थी। लेकिन आज देखते ही मेरा दिल अजीब दर्द से भर गया। ठीक, उसके हाथ की रेखाएँ उलझ गई थीं। फिर पर्पटियों के भीतर कुछ हिला -वे रेखाएं भगवान की नहीं, इन्सान की बनाई हुई थीं। भगवान विश्वास में पलता है, उसे बदनाम क्यों कीजियेगा। जब इन्सान इन्सान की जिन्दा लाश पर ये रेखायें खोदता है तो भगवान वहां मौजूद नहीं होता।

मैं नेक के हाथ की उन खराशों को नखुनों से खोदता रहा और कुरेद २ कर जानने की कोशिश करता रहा कि उनकी तह में क्या है?...अजीब २ विचार मेरे मस्तिष्क में आकर टकराते रहे। मैं चाहता रहा कि नेक को छाती से लगाकर अपने दिमाग़ की सनक उसकी छाती पर गाड़ दूं कि नेक! घबराओ नहीं, मेरे तेरे दिन की आँधी बड़े ज़ोर से हमारी ओर बढ़ी चली आ रही है। ये रेखाएं एक दिन रंग लाएँगी। तब इन्सान इन्सान के बीच मिट्टी की यह दीवार खड़ी न रहे गी। तब तेरे हाथ युगों से नमी के लिए तरस तरस कर फूटी धरती के समान दुनिया का मानचित्र न बने रहेंगे। अब समय ने हमारे लिए बांहें फैला दी हैं।

कहा केवल इतना, "नेक इन्तजार करो, दिन दूर नहीं जब हमारी दुनिया यूं वीरान और सूनी न रहेगी। उस में भी अपना रंग होगा।"

"अरे यार, तुम से मामूली बात भी करो तो लेक्चर झाड़ने लग जाते हो। ये शेख चिल्लियों की सी बातें कहां से सीखते रहते हो?"

"तेरे जैसे अपनों से.....।"

सफ़र पांच मील का था लेकिन कट चला था। बातों में पता न चला कि हम कब नोमनी पर आ पहुँचे हैं। नोमनी नदी में बाढ़ आई हुई थी। पानी किनारों से बाहर निकल रहा था। मैं ने नेक की ओर घूमकर देखा। वह बोला, "चिन्ता न करो, नाव कोई पार ले गया होगा। अभी लाता हूँ।"

और वह अपनी कमीज़ खोलने लगा। हम से कुछ हटकर एक महिला बैठी हुई थी। उसके दाईं ओर एक गठरी थी, संभवत: जिस में अधिकतर कपड़े ही रहे होंगे। पहरावे से युवा दिखाई देती थी। सिर पर रेशमी रंग की ओढ़नी थी, जिसका छोटा सा घूँघट चेहरे पर डाला हुआ था। वह घास पर बैठी सामने नोमनी में देख रही थी। नेक कपड़े उतार कर अपना लंगोट ठीक करने लगा। मैं ने उधर घूँघट वाली की ओर देखा। वह घूँघट को दो अंगुलियों से लम्बा करके तानकर उसके बीच से हमारी ओर तक रही थी। मुझे उधर देखता जान उसने पहलू मोड़ लिया। नेक ने धड़ाम से नोमनी में छलांग लगाई और मज़े में उस पार को तैरने लगा। पानी काफ़ी गहरा था। मेरा जी भी नहाने को मचल उठा। मैं ने नेक को आवाज़ दी कि मैं भी आता हूँ। उस ने मुझे मना करते हुए कहा—उस पार चलकर नहायेंगे।

थोड़ी देर में नेक लकड़ी की तीन-चार मोटी शहतीरियों को बांधकर बनाई गई नाव एक बांस से खेता हुआ ले आया। किनारे के साथ नाव को लगाता हुआ बोला, "जूती खोल लो और मेरे कपड़े भी हाथ में पकड़ लो, शायद पानी ऊपर तक आ जाए।" इतने में एक लड़का ढोर ले कर आ गया। ढोर उसने नदी में हांक दिए और खुद हमारे पास खड़ा हो गया। मैं ने नेक के कपड़े सम्भालते हुए उस लड़के को कहा कि उस महिला को भी कह दे कि पार जाना हो तो नाव पर आ जाए। लड़के ने उसके पास जाकर उस के घूँघट के ज़रा पास झुकते हुए हमारा निमंत्रण दे दिया। फिर लौटकर उसने बताया, "वह कहती है—कश्ती छोटी है। बोझ अधिक हो जाएगा, व्यर्थ में कष्ट क्यों उठाइएगा!"

मैं ने मुड़कर उसकी ओर देखा। वह भी इधर ही देख रही थी। झट से उसने अपना चेहरा घुटनों में झुका लिया। मुझे हिलाता हुआ नेक बोला, "चलो!" और नेक ने नाव को पांव की ठोकर से पानी में धकेला और स्वयं बांस पकड़कर ऊपर चढ़ गया। नाव बीच धार पहुँच गई थी। नेक मज़े में

बांस मारता हुआ नाव खेता जा रहा था। मैं ने पुनः घूमकर उस महिला की ओर देखा वह अब भी घुटनों में सिर दबाए बैठा थी। नेक पतवार पर बोझ डालता हुआ बोला, "मास्टर, औरत को यूँ मुड़कर नहीं देखा करते। मर्दानगी को धक्का पहुँचता है।"

इतने में वह लड़का ढोरों को फ़सल में पड़ने से रोकने के लिए आवाजें देता हुआ हमारे पास आ पहुँचा। नाव पर हाथ रखता हुआ बोला, "जी, वह रो रही थी।"

वहां पानी कम था, पर नाव चली जा रही थी। मैं ने नेक की ओर घूमकर देखा—उसकी मर्दानगी शर्म से पानी २ हो गई।

गुरु बनाम ईश्वर

यही कोई तीन साढ़े तीन का समय होगा। भक्तिरस की बाढ़ आई हुई थी। मोहल्ले भर में कोहराम मचा हुआ था। गली की दोनों ओर आमने सामने के कुछ घरों की दहलीजों पर स्त्रियां जमा थीं। बालिकायें उन स्त्रियों के आगे थड़ों पर नीचे पांव लटकाय बैठी थीं। युवतियाँ दहलीजों के पीछे खड़ी गली में मचे अध्यात्मिक महाभारत को झांक रही थीं। उनमें से कुछ को युवती और महिला के बीच की कड़िया कहा जा सकता था। कुछ बच्चे पास ही किलकारियां भरते हुए खेल रहे थे। अधेड़ अवस्था की स्त्रियां और वृद्धायें उस लीला में विशेष रुचि ले रही थीं, क्योंकि ईश्वर के प्रति आस्था उन में दिन-बदिन गहरी होती जा रही थी। उस काण्ड में युवतियों और बालिकाओं के रस लेने का रूप अपना २ था। गली में राहियों की ट्रैफिक पर प्रतिबन्द सा लग गया था। स्त्री गुजरती तो थोड़ी देर उस का वहाँ रुकना अनिवार्य्य सा था। पुरुष नीचे दृष्टि गाढ़े गुजर जाता।

महिलाओं और कुमारियों के उस जमघट में अधिकतर दूकानदार घरानों में से थीं। कुछ थीं जिन के पति किसी न किसी दफ़तर में नौकर थे। अतः इस समय वे उन की प्रतीक्षा में खड़ी थीं। दूकानदार तो रात के दस-ग्यारह बजे ही घर लौटेंगे। लेकिन बाबूआयन महिलाओं को इतनी देर इन्तजार नहीं करना पड़ेगा। दूकानदारों की पत्नियां जसी वैसी

धोतियां, जम्पर-सलवार, पेटी-कोट आदि पहने वहां मग्न थीं। बाबूआयनें पूरी सजधज में अपने बाबू जी की प्रतीक्षा में थीं—यदि बाबूजी सारा दिन दफ़्तर के रजिस्टरों में दिमाग़ खपा कर घर लौटें, और पत्नी का चेहरा देखकर खिल न जाएँ तो धिक्कार है पत्नी के होने पर —मेकअप करते समय उन्हों ने ऐसे ही सोचा था। वे स्थूलरूप में वहां थीं। लेकिन बार २ गली के बायें दायें झांक रही थीं। एक के दिमाग़ में साइकल के पहिए चल रहे थे तो दूसरी के मस्तिष्क में रेशमी टाई फहरा रही थी। नव-विवाहिताओं के पास से किसी न किसी सेंट की महक़ आरही थी। बाक़ियों का काम स्नो और पाउडर से ही चल गया था। कुछेक ने चाय के लिए पानी चूल्हे पर रखा हुआ था, अतः वे थोड़ी २ देर बाद अन्दर जाकर आग की आंच मद्धम कर आती थीं। दो एक दुमंज़ले की अटारी के साथ सट कर बैठीं, नीचे गली में मचे धर्मयुद्ध को संजय दृष्टि से देख रही थीं।

बात कुछ भी नहीं थी ; थी भी सब से बड़ी। कौशल्या चाची कह रही थी, "...आखिर गुरु वरु मानने में रखा क्या है ? ये तो सब परमात्मा को जानने और उसे पा लेने के साधन मात्र हैं। लक्ष्य को अलग छोड़कर साधन की पूजा से क्या होगा ? मकान पर चढ़ने के लिए ज़ीना खड़ा करें, और छत पर चढ़ते २ ज़ीने पर ही जम जायें, उस से क्या होगा ? जब हम मानते हैं कि संसार की परिचालिका शक्ति कोई है, और उसे हम परमात्मा की संज्ञा देते हैं, तो क्यों न सीधे उसी की आराधना करें ? उसे जान—पा लेने के अनेकों रास्ते हैं। जौनसा भी पकड़ लो ! ..."

शकुन्तला देवी सामने वाले मकान की दहलीज़ पर पांव के बल बैठी हुई थी। अपने पेटी कोट को घुटनों में दबाती हुई बोली, "यह तो अपने २ विश्वास की बात है। जिसे नहीं, वह न माने। मैं गुरु को तारनहार मानती हूँ। जिस ने ईश्वर का ज्ञान दिया, उसे पाने का रास्ता बताया, उस को क्यों न पूजें ? आखिर ईश्वर का ज्ञान मिला कहां से ? पेट से ही हमारे साथ

तो नहीं आया। मामूली सी बात सीखने के लिए गुरु का संकेत चाहिए, परमात्मा को जान लेना तो बहुत बड़ी बात है। फिर उस तक पहुँचना! इस के लिए तो कठिन तप करना पड़ता है। तप गुरु की दीक्षा के बिना नहीं किया जा सकता।" बाईं ओर से एक पुरुष आता दिखाई दिया। कौशल्या चाची ने अपनी धोती का पल्ला सिर पर संभाला। शकुन्तला ने उस पुरुष की ओर देखा और उपेक्षा से दृष्टि कौशल्या चाची की ओर फेर ली और पुनः बोली, "जितने साधु, सन्त, योगी, महात्मा हुए हैं, सभी गुरु की छत्रछाया तले 'उस' की महिमा जान पाए हैं। वे तो गुरु बिन गति न मानते थे। कइयों ने तो गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा दर्जा दिया है। आज के ज़माने को जाने कैसी ग़रक़ी आ गई है, हर आदमी अपने आप में गुरु बना बैठा है। उस तक पहुँचना हांईं-सांईं बात नहीं..."

पीछे से कौशल्या चाची की लड़की अहल्या ने आकर बताया कि दाल का पानी उबल रहा है, दाल डाल दे।

"रसोई में जाकर देख, दाल थाली में धोकर रखी है, जाकर डाल दे ना!" कौशल्या बोली। अहल्या वह रौनक़ छोड़कर जाना नहीं चाहती थी। मां के तेवर देखकर अपने आप पर कुढ़ती हुई अन्दर चली गई। उस ने तब सोचा—अगर वह थोड़ी देर मां के पास जाकर दाल का पानी न उबालती तो कौनसी आफ़त आ चली थी? और मां जवान बेटी को निठल्ली क्योंकर बैठने देने लगी!

शकुन्तला की ओर उन्मुख हो कौशल्या बोली, "मैं मानती हूँ बहन, कि गुरु दीक्षा लेने की परम्परा बहुत पुरानी है। तब के और अब के लोगों में बहुत अन्तर है। उन दिनों ज्ञान एक विशेष वर्ग तक ही सीमित था। उसी वर्ग द्वारा ज्ञान का प्रसार होता था। वह प्रसार कई बार विकृत रूप भी धारण कर लेता था। जभी तो गुरु की आवश्यकता पड़ती थी। जब आवश्यकता थी, वह परम्परा भी निभती रही। तब धोखे पाखण्डों से बचने के लिए गुरु दीक्षा

ली जाती थी। कई बार गुरुदीक्षा में भी पाखण्ड का पोल खुल जाता था। ... फिर भी पुराने वक्तों में गुरुओं का कुछ नैतिक स्तर था। आज तो दुनिया अपने सगे पर भी विश्वास नहीं करती। फिर गुरु तो सम्पूर्ण और दोषमुक्त होना चाहिए। मुझे तो कोई त्रुटिहीन व्यक्ति दिखाई नहीं देता। ऐसी अवस्था में व्यक्ति को ईश्वर का दर्जा कैसे दिया जा सकता है? ईश्वर मानवेतर है, मानव से ऊंचा है। हम उसकी रचना हैं। यह ब्रह्माण्ड उसकी माया है। दुनिया अपनी वर्तमान परिस्थिति से असन्तुष्ट होकर पलायन करना चाहती थी। ये गुरु दुनिया को परलोक सुधार का प्रलोभन देकर मरीचिका में उलझाये रखते हैं। भक्तों से अधिक इनकी भक्तनियां होती हैं। क्योंकि स्त्रियों की अज्ञानता से लाभ उठाकर ये उन्हें बुद्धू बनाते रहते और उन्हें और भी गहरे अन्ध कूप में डाले रखते हैं।

"अच्छा अच्छा तू बुद्धू न बन," तमक कर शकुन्तला बोली, "हवन सन्ध्या के चार मंत्र सीख लिए और लगी हमारे सामने ज्ञान बघारने। तू तो बेपीरी है। सारी दुनिया तेरे जैसी कैसे हो जाए?....." पास खड़ी स्त्रियां कौशल्या की ओर देखने लगीं। शकुन्तला की तीखी आवाज से कौशल्या मोम हो गई। इसी बीच अध्यात्म चर्चा का एक तार पास बैठी स्त्रियों में भी झन झना उठा। फूलदार जम्पर और सफ़ेद ओढ़नी वाली बोली, "हम तो गुरु क्या, सभी कुछ पति को मानते हैं। घर में परमात्मा है, तो बाहर क्यों भागें....." बाक़ी बात उसकी जबान पर तैर रही थी कि बीच में टोक कर पास ही दीवार के सहारे टेक लगाकर खड़ी, हरे किनारे की सफ़ेद धोती वाली महिला बोली, "बस बस, तू रहने दे जरा इस व्याख्यान को! पति को परमात्मा मानें तो मानना पड़ेगा कि परमात्मा भी बूचड़ है। सभी पति एक से नहीं होते जो उन्हें परमात्मा छोड़ कर उस से भी ऊपर कह लिया जायें। बुरा पल्ले पड़ गया तो परलोक भी गया..." कहते २ ऊपर नज़र उठी तो अधेड़ अवस्था के एक सज्जन उधर देखते दिखाई दिए। उन्हें देख कर सफ़ेद धोती वाली सिर पर

धोती सहेजती हुई चुप हो गई, और उधर पासा मोड़कर बैठ गई। वह सज्जन भी मण्डेर से पीछे हट गए।

उधर कुछ ही क्षणों की वार्तालाप के उपरान्त कौशल्या चाची और शकुन्तला देवी के स्वर तेज़-तीखे हो गए। जो स्त्रियां घरों में कामकाज में लगी थीं, वे भी शोर सुनकर गली में देखने लगी। कोई छत की मण्डेर से नीचे झांक रही थी, कोई अपनी जालीदार खिड़की के पीछे से गली में तक रही थी, और कुछेक दरवाज़ों में खड़ी स्त्रियों के पीछे से झांकने लगी थीं। कोई स्वाइटर बुनती उठ आई थी और उसकी अंगुलियों के बीच सिलाइयों की फुर्ती कुछ धीमी सी पड़ गई थी, तो कोई मटर की फलियाँ बीनती उठ आई थी और उस के हाथों में फलियां चिरमरा रही थीं। मोहल्ले भर में गुरु-ईश्वर-महिमा-गान गूँज रहा था।

शकुन्तला देवी की बड़ी लड़की ने ड्योढ़ी में खड़े अन्दर नन्हे के रोने की आवाज सुनी। उसने पलने के पास जाकर देखा—नन्हा जाग उठा था और अकारण ही चिल्ला रहा था। उसने नन्हे को अपनी छाती से लगाकर थपकाना शुरु किया कि वह पुन: सो जाए। लेकिन नन्हा चुप न हुआ। चिड़कर वह उसे ड्योढ़ी में ले आई और दहलीज़ के पास जाकर नन्हे को शकुन्तला की गोद में दे दिया। शकुन्तला ने देखा—नन्हा कच्ची नींद उठ पड़ा था। शकुन्तला उसे थपकती हुई धीरे धीरे अपनी गोद का पलना झुलाने लगी।

कौशल्या चाची पहले की अपेक्षा ज़रा धीमे स्वर में, अपनी धोती का पल्ला मसलती हुई बोली, "भले घरानों की औरतों का काम थोड़े ही है गुरुओं वरुओं के पीछे मण्डराते रहना। सभी जानते हैं ऐसी घूमने वाली औरतें कैसी होती हैं। गुरुओं साधुओं के कारनामें तो आए दिन सुनाई पड़ते हैं। घर बार से गई बीती....."

"खबरदार, मेरे सामने गुरु की निन्दा की तो मुझ से बुरा कोई नहीं...। बहुत सिर चढ़ गई है। मैं तुझे भी जानती हूँ, तेरे अगले पिछलों को

भी अच्छी तरह जानती हूँ... । घाट घाट का पानी पीकर आई बड़ी उपदेश करने...", गुरु के चरित्र पर किए कौशल्या के वार का उत्तर देती हुई शकुन्तला कड़की, "तू समझती है, जैसी तू गई गुज़री है, वैसे ही सभी लोग हैं। ज़रा अपनी चारपाई के नीचे देख ले, फिर बात कर !..."

कौशल्या चाची ठण्डी पड़ गई। आस पास देख रही स्त्रियों की आँखें कौशल्या के रंग उड़े चेहरे पर आ लगीं। अपनी धोती के ढलक रहे आंचल को कंधे पर सम्भाल कर कौशल्या बोली, "बहन, मैं ने तुझे तो कुछ नहीं कहा। बात से बात चल निकली। मैं क्या जानती थी कि तू इतनी गुस्सीली है। तू मेरे मायके ससुराल को कोसने लगी। बात मेरे साथ हो रही है, उन्हों ने तेरा क्या बिगाड़ा है ?...बात कुछ चल रही थी। तू कुछ का कुछ ले बैठी..."

शकुन्तला ने अपने पेट पर कुछ गीला २ सा महसूस किया। उसने नन्हे को हिलाकर अपना जम्पर टटोला और फिर नन्हे के नंगे नितम्ब पर एक चपत दे मारी, "इस मोये को भी ऐसे समय ही ग़रक़ी आती है..." और नन्हे को बाज़ुओं में उठाकर जम्पर झाड़ने लगी। फिर टुक कौशल्या की ओर देख कर बोली, "अच्छा अच्छा, अब बस कर, तुझे तो और कोई काम नहीं... ।"

शकुन्तला नन्हे को उठाकर अन्दर ले गई और उसे गीले तौलिए से पोंछ कर पलने में लेटा दिया। फिर अपना जम्पर धाने लगी।

गली में बैठी शेष स्त्रियों को भी धीरे धीरे बहुत ज़रूरी काम याद आने लगे। सारा जमघट हौले २ छूटने लगा। मोहल्ले भर का वातावरण पीला सा हो गया।

सील मुर्ग़

अंगड़ाई के साथ एक लम्बी उबासी लेते हुए मानकू ने गरदन ज़रा ऊपर उठाकर झोंपड़ी के बाहर झांका। दूर खेतों में हल चलाते हुए किसानों की आवाजों से जान पड़ता था कि भोर होने को है। बाहर कुछ दिखायी न देता था, क्योंकि चारों ओर गहरा कुहासा छाया हुआ था। मानकू ने लिहाफ़ में पड़े २ सिरहाने रखी पगड़ी उठाकर बांधी और लिहाफ़ ठीक से ओढ़ कर चारपाई पर उकड़ूँ बैठ गया। खेतों में हल के आगे जुते बैलों की टुनटुनाती घंटियों की आवाज़ सुनाई दे रही थी। पास की हवेली से मुर्गे की बाँग सुनाई दी तो उसके अपने मुर्गे की बांग उसके कानों में गूंज गयी। उसे पल भर के लिये अपना 'सील कुक्कड़' याद आया, जिसे वह शहर से डेढ़ रुपये में ख़रीद कर लाया था, और जिसे उसने शरबती मक्की और लसन खिला २ कर जवान किया था। जब वह गरदन उठाकर बांग देता तो आसपास की जवान 'पट्ठियां' उसकी ओर भागती चली आती थी। मानकू को जब भी उसकी याद आती, उसके दिमाग़ में उन जवान पट्ठियों के पंख फड़फड़ाने लगते। उसे लगता जैसे उन राधाओं के साँवरिया को बिछुड़ाने का पाप उसने किया है, और वे उसे कभी मुआफ़ नहीं करेंगी, उनके पंख इसी

तरह उसके दिमाग़ में फड़फड़ाते रहेंगे। लेकिन वह हर बार सोचता कि अगर वैशाखी के मेले पर पहनने के लिये तहमद का कपड़ा ख़रीदने के पैसे उसके पास होते तो वह अपने 'सील कुक्कड़' को कभी न बेचता। उसका उसे मिला क्या? पौने तीन रुपये। हत्तेरे की!.....पौने तीन रुपये तो उसकी एक बांग की क़ीमत थी। लेकिन बेचते समय उस ने सोचा था—'चलो कोई नहीं, नई फ़सल निकलेगी तो इससे भी अच्छी नसल का मुर्ग़ा लाऊँगा।'—नयी फ़सल तो निकली लेकिन उस में से मुर्गे के पैसे न निकल सके। उलटे लगान की कुछ रक़म का नम्बरदार से उधार करना पड़ा। उसके बाद कई नयी फ़सलें निकलीं, किन्तु हर बार कोई न कोई कारण बन जाता और उसकी मुर्ग़ा ख़रीदने की अभिलाषा घुट के रह जाती। कभी फ़सल कमज़ोर पड़ जाती, कभी किसे रिश्ते नाते में ब्याह-कारज आ जाता और कभी तन ढांपने के लिये कपड़े लत्ते की ज़रूरत महसूस होने लगती। लेकिन यह वह उम्र ढलने पर भी न कर सका कि मुर्ग़ा पालने की चाहत मन से निकाल दे। वह मुर्गे को अपने आंगन की शान समझता था। आज भी यदि कहीं से कुछ टके जुटा पाये तो सब से पहिले मुर्ग़ा ख़रीद ले। लेकिन अब आकर उसे वहम सा हो गया है कि वह दिन कभी नहीं आयेगा जब उसकी झोंपड़ी से जवान बांग सुनाई देगी। परिणामतः वह अपने सील-सांवरिया की बांग को याद कर के ही अपने मन को गांठ दे लेता है।

वह मोटे खद्दर की मैली सी चादर तन पर लपेटता हुआ उठ खड़ा हुआ और चारपाई के नीचे दियासिलाई की डिब्बी खोजने लगा। चारपाई के नीचे सूखी घास पड़ी हुई थी, जो उसने तड़के उठकर आग के लिये रखी थी। वह घास को इधर उधर कर दियासिलाई की डिब्बी टटोल हटा और झोंपड़ी से बाहर निकल आया। बाहर कुहासा बहुत गहरा था। सात आठ क़दम से परे कुछ दिखायी न देता था। चारों ओर क्षितिज से काफ़ी ऊपर तक कुहासा ही कुहासा फैला हुआ था। ऊपर आकाश में तारे टिमटिमा रहे

थे तारों की रौशनी झोंपड़ी के आंगन में पड़ रही थी। मानकू ने गरदन ऊपर उठाई। किसानों का तारा सिर पर आ रहा था। चांद कब का बुझ चुका था। मानकू झोंपड़ी के दरवाज़े के आगे खड़ा साथ वाले रास्ते की ओर देखने लगा ताकि किसी गुज़र रहे व्यक्ति से दियासिलाई मांग कर आग जला सके। थोड़ी देर तक कोई न गुज़रा और वह वहां खड़ा २ सरदी से ठिठुरने लगा था। दरवाज़े से बाईं ओर झोंपड़ी से ज़रा हट कर रात की जली आग की राख दिखाई दी, ओस पड़ने से जिसकी उठान दब चुकी थी। अनायास उसके पास पड़ी दियासिलाई की डिब्बी उसे दिखाई दे गयी। उसके रोम २ में जैसे उष्णता दौड़ गयी। बग़ल से हाथ निकाल कर उसने डिब्बी को उठाया और झोंपड़ी में घास उठाने के लिये चला गया। झोंपड़ी के एक कोने में सम्भाल कर रखे हुए सन के 'छल्ले' और ईख की पच्छियां और चारपाई के नीचे से सूखी घास ला कर उसने धूनी के स्थान पर रख दी। उसके बाद झोंपड़ी के पीछे इकट्ठी की हुई लकड़ियां लाने चला गया। शिशिर के लिये वह प्रायः लकड़ियां जमा कर रखता था। फिर इस बार तो रावी की बाढ़ में बहुत लकड़ी बह कर आई थी। वह लकड़ियां उठाकर ले आया और बैठकर आग जलाने लगा। जब तीन दियासिलाइयां चिंगारी पकड़ने में असमर्थ रहीं तो उसने जाना कि ओस पड़ने से दियासिलाई सिल पकड़ गयी है। वह डिब्बी को मुँह के आगे रख कर गरम सांस की भाप छोड़ने लगा। दो तीन सांसे छोड़ने के उपरान्त वह दियासिलाई की तील मसाले पर घिसाता। यह क्रम बार २ दोहराने पर भी जब आग न जल सकी तो वह नंगे घुटनों और पाँवों को चादर के अन्दर समेट कर उकड़ूँ सा बैठ गया।

वहां घुटनों को छाती से लगाय और उन पर ठोड़ी रख कर बैठे २ उसकी आंखे मुंदने लगी थीं कि रास्ते पर ज़रा परे से किसी के खांसते हुए चले आने की आवाज़ सुनाई दी। वह पदचाप ज़रा समीप आई तो उसके साथ

ही हुक्का गुड़कने की ध्वनि मिली। मानकू ने वहां बैठे २ अलसाये स्वर में आवाज दी, "हुक्केवाला कौन है भाई ?"

"मानकू चाचा मैं हूँ, छज्जू !" हुक्केवाले ने तनिक रुकते हुए कहा। हुक्के की गुड़कन सुनते ही मानकू के शरीर में चेतना दौड़ गई थी, घुटने को नाखून से जरा खुरशते हुए मानकू बोला, "छज्जू यहां तो आ, तुम्हारे पास हुक्का है जरा आग तो दे जा। मेरी डब्बी रात बाहर रह गयी, ओस में भीग गयी है।"

छज्जू झोंपड़ी की ओर चला आया। उसके एक हाथ में हुक्का था और दूसरे हाथ में एक छोटी सी टोकरी, जिस में बीज पड़ा हुआ था। टोकरी उसने झोंपड़ी के दरवाजे में रख दी और हुक्का ले कर मानकू के पास पंजों के बल बैठ गया। मानकू ने उसके हाथ से हुक्के की नली ले कर मुंह से लगा ली—

"खंह खंह खंह खं...खांह खांह खांहा...खउं...खं...तेरा बेड़ा तरे, इतना कड़वा तम्बाकू काहे को पीते हो ?...कलेजा नहीं जल जाता तुम्हारा?... खंह खं...क्या डाला है इस में ?" धुंधलके में छज्जू की ओर गरदन घुमा कर अपने गले की नाड़ियों पर हाथ फेरता हुआ मानकू बोला और उसने फिर हुक्के की नली मुंह से लगा ली।

"डाला तो कुछ नहीं। खालस तम्बाकू है देसी। सीरा जरा कम रह गया है। इसी से गला पकड़ता है। वरना मजा तो बड़ा आता है इसका चाचा। और वह गोभी तम्बाकू जो तुम पीते हो, उस से तो घोड़े की लीद अच्छी है..." एड़ियां नीचे टिकाते हुए छज्जू ने कहा और पास से सूखी घास उठाकर हुक्के की टोपी में से आग निकालने लगा। टोपी में ऊपरी भाग राख हो चुका था। छज्जू ने टोपी के साथ बन्धे छोटे से चिमटे को पकड़ कर उसकी एक हलकी सी ठोकर टोपी में लगाई। नीचे से राख को चुनौती देती हुई आग झांकने लगी। उस ने चिमटे से राख के नीचे धधक रहे गोबर-पिण्ड के टुकड़े को तोड़ा और एक टुकड़ा बाहर निकाल कर बाएं हाथ में पकड़ी सूखी घास

पर रख दिया। उसके बाद उसने एक पांव उस धधक रहे टुकड़े पर रखा और जूती के दबाव से उसे घास पर फैला दिया। उसके बाद घास को उठा कर उसने दो तीन लम्बी २ फूंकें लगायीं और आग फफक २ कर जलने लगी। फिर उसने हाथ में जल उठी घास को सामने पड़ी बालन सामग्री में झोंक दिया।

रास्ते पर दो व्यक्ति बाहर से गांव की ओर आ रहे थे। धूनी जलती देख कर वे भी इधर को हो लिये।

"क्या बात है मानकू चाचा, आज बड़ी देर से धूनी जलाई..." धूनी के पास आकर तहमद को घुटनों से ज़रा ऊपर उठा कर बैठते हुए एक व्यक्ति ने कहा। दूसरा व्यक्ति 'वाह...वा...' के रूप में मानकू का अहसान मानता हुआ पास आ खड़ा हुआ।

"यारा, तीलों की डब्बी रात 'तरेल' में भीग गयी....." मानकू ने पहले व्यक्ति की ओर टुक देखते हुए कहा।

सवेरा हो आया था, किन्तु चारों ओर गहरा कुहासा था। कुहासे का अन्धकार मिटता जा रहा है। उसकी जगह उजाला जन्म ले रहा था। छज्जू बाहर खेतों में बीज पहुँचाने चला गया था। उसका स्थान लालू चौकीदार और चन्द ने ले लिया था। लालू इस जाड़े में मानकू की धूनी पर पहली बार आया था। आज भी सम्भवतः वह न आता अगर आखिरी पहर उसकी आँख न लग जाती और पोलीस अचानक गश्त पर न निकल आती। आँख तो उसकी प्रायः लग जाती थी, किन्तु आज तो वह खाट पर ही पकड़ा गया। हवालदार ने उसे और तो कुछ न कहा, न ही उसे नौकरी से निकाल देने की पुरानी धमकी दी, केवल चारेक थप्पड़ और शायद गिन कर चार जूतियां उसके चूतड़ों पर मार कर उसे पुनः पहरे पर भेज दिया। ऐसी मारपीट को लालू जुकाम जितना भी महत्त्व न देता था। या यूँ कहना चाहिए कि यह सिलसिला भी उसने अपनी नौकरी में शामिल कर लिया हुआ था। वह प्रायः कहा करता कि जब हाथ हलका करने के लिए पोलीस

को कोई मुश्तबा न मिले, तो चौकीदारों का नसीबा जागता है। सो, मरग—पैदायश का रजिस्टर लेकर जब भी उसे थाने जाना होता, तो वह समझ लेता था कि आज शनवाई का दिन है। और चन्द कल शाम शहर से आया था। रात तो वह घर से निकल ही न सका। काफ़ी रात तक वह चूल्हे के पास बैठा अपने मां बाप और छोटे भाई बहनों को शहर की बातें सुनाता रहा। वहां से उठकर वह सोने के लिए चला गया और अपनी घर वाली से गांव की बात, उसकी बातें, अन्दर की बात, बाहर की बातें, मीठी बात, नमकीन बातें सुनता हुआ वह तृप्त और निश्चिंत सो गया। अब वह बाहर से जंगल-पानी होकर लौट रहा था कि मानकू की धूनी जलती देख वह उधर को ही लिया। उसन आते ही मानकू को नमस्कार किया और उसकी कुशल-क्षेम पूछी। और उससे सत्तों पुतरीं मुँह धोने का वरदान लेकर धूनी के पास पंजों के बल बैठ गया।

"सुनाओ भई चन्द, तेरे शहर का क्या हाल है?...सुना-अब तो शहर में रिक्शों की बड़ी धूम है, तांगेवालों को कोई पूछता ही नहीं!" मानकू ने टाँगें आग के पास फैलाते हुए कहा।

"सर्दियों में कुछ मन्दा ही रहता है चाचा," चन्द अपने धारीदार पायजामे को पांबचे को ज़रा ऊपर उठाकर ज़मीन पर टिक कर बैठता हुआ बोला, "वैसे भी चाचा इस धंधे में बहुत मन्दा आ गया है। मैं चार आन मांगूं तो साथ वाला दो आने में सवारी उठा लेगा। सारा दिन रिक्शा चलाते २ नाड़ियां जवाब दे जाती हैं। उस पर टके २ के आदमी की धौंस। तुम लोग बहुत सुखी हो। घर बैठे जैसी भी हो इज़्ज़त की तो खाते हो ना...शहर में भी तो हमारी गुज़र ही है। रिक्शा वालों का कोई रेट ही नहीं रहा!"

"एका नहीं ना!' एक अधजली लकड़ी को उठा कर आग पर रखते हुए मानकू ने कहा, "...लेकिन अब तो तू बड़ा सयाना हो गया है चन्दा! शहर की हवा लग गयी है बच्चू..."

और गर्वमिश्रित लज्जा की मुस्कान चन्द के चेहरे पर दौड़ गयी। वह बोला, "ऐसी तो कोई बात नहीं चाचा, यह तो सब तुम्हारा दिया है। मालूम है ना, एक बार नदी में बाढ़ आई हुई थी। तेरी बग़ीची बाढ़ में बह रही थी और तुम वहां नए पौधे लगा रहे थे। मैं ने तुम से कहा था—चाचा तुम्हारा क्या ख़्याल है कि ये पौधे देख कर नदी पीछे हट जाएगी? तो तुम ने कहा था—'हटाये न हटायें, यह तो उसका काम है; मगर आदमी अपना काम क्यों छोड़ दे?' तब मैं ने सोचा था कि मानकू चाचा अगर इस उम्र में भी विपदा की छाती पर पांव रखकर यह बात कह सकता है, तो मेरी तो समूची जवानी अभी सामने पड़ी है। लेकिन चाचा, उसके बाद मैं ने जान लिया था कि आदमी जो बनता है अपने बल बूते पर बनता है। साथी बनता है आदमी का तो आदमी ही बनता है।" आग के ताप से तप गयी टाँगों को चन्द ने हाथ से मलकर सहलाया और बात को जारी रखते हुए बोला, "तुम तो चाचा जानते ही हो कि मैं पढ़ाई-वढ़ाई छोड़ कर ढोर चराने लग गया था। तुम्हारी बातों को ही गांठ बांधकर मैं ने दोबारा पढ़ना शुरू किया। मिडल पास किया भी। वह भी भला हो बेचारे मास्टर का जिस ने मेरी फीस मुआफ़ कर दी। वरना बापू! उसने तो कभी एक पैसा भी ख़रचने को नहीं दिया। मास्टर था बहुत अच्छा, वह तो किताब तक किसी से माँग-तांग कर मुझे दे दिया करता था..."

"मास्टर की क्या बात करते हो?" लालू चौकीदार धूनी की बिखरी लकड़ियाँ इकट्ठी कर के आग पर ठीक से रखता हुआ बोला, "वह तो निरा गऊ था। कहा करता था—मेरा एक भी शागिर्द काम का निकल आया तो बता दूँगा कि पढ़ाना क्या होता है..."

लालू की बात काट कर मानकू बोल उठा, "उसका कोई शागिर्द काम का निकल ही कैसे सकता था? घर खाने को नहीं और मां चक्की पीसने गयी है! यहां से आगे पढ़ाने की किसी में सकत हो भी। किसी बड़े शहर में होता तो उसकी क़द्र पड़ती..."

"चाचा शहर की बात छोड़ो तुम ! वहां के लड़के मास्टर को उस्ताद नहीं, नौकर समझते हैं। कहते हैं—मास्टर तनख्वाह लेता है, हम फ़ीस देते हैं, मास्टर कोई एहसान करता है ?...मैं तो समझता हूँ हमारे लड़के गाँवों के बहुत अच्छे हैं। फिर अगर हमारे लड़के पढ़ भी जायें तो कौन सी तेग़ मार लेंगे। बहुत हुआ तो दस जमातें पढ़ लेंगे, वह भी सैकड़ों में एक। दसवीं को तो आज धक्के भी नहीं मिलते। बीसियों दसवीं पास हमारे साथ रिक्शा चलाते हैं..."

लालू चौकीदार ने चन्द की बात में हां मिलाई, "यह तो तुम ने सोलह आने ठीक कहा। उसे ही देख लो छग्गन के बेटे जगन को, प्रैमरी में बजीफा लिया और मिडल तक भी न पहुँच सका। आज कल अम्बरसर एक होटल में नौकरी करता है। वह कमा कर न भेजे तो छग्गन भूखा मर जाए..."

"क्यों छग्गन ने हल छोड़ दी है क्या ?" चन्द ने धुएँ से आंखें बचाते हुए गरदन बाईं ओर झुकाकर पूछा।

"अब उसकी उम्र रही है हल चलाने की ?" लालू से किए चन्द के प्रश्न का उत्तर देता हुआ मानकू कहने लगा, "हल देह की जान के साथ चलते हैं, वह हड्डियों का पिंजर तो दिखायी देता है अब। अब तो उसे पूरा अन्धरातो हो गया है। सूरज डूबने के बाद उसे अपना हाथ तक नहीं दिखायी देता"। और पगड़ी के नीचे अपने सिर को मानकू अंगुलियों से खराशने लगा। फिर पगड़ी को सिर पर ज़ोर २ से रगड़ कर मानकू बोला, "चन्दा यार, किसानी और तुम्हारा धंधा बिलकुल एक से हैं। इसकी तरह तुम भी अपने साथ दूसरों का बोझ ढोए फिरते हो। और दुनिया में वे भी हैं जो अपना बोझ भी उठा नहीं सकते !..."

"ऐसे ही है चाचा," आंखें मलते हुए चन्द ने कहा, "सभी लोग एक से हो जायें तो दुनिया का काम कैसे चले ?..." और हुक्का गुड़काते हुए

धूनी के पास आ रहे जगते की ओर गरदन उठाकर चन्द बोला. "जगतया, यार धूनी पर लकड़ियां तो और लगा दे...और हैं न लकड़ियां मानकू चाचा ?"

"है, क्यों नहीं। जा जगतया झोंपड़ी के पिछवाड़े पड़ी हैं, ले आ !" मानकू ने जगते की ओर देख कर झोंपड़ी के पिछवाड़े की ओर इशारा करते हुए कहा।

जगता हुक्का धूनी के पास रख कर पिछवाड़े से लकड़ियां लाने चला गया। मानकू ने उसके हुक्के की नली अपनी ओर घुमा ली और होंठों पर ज़बान फेर कर नली के मुँह पर मुट्ठी कसकर हुक्का पीने लगा। जगते ने लकड़ियां लाकर धूनी पर लगा दीं। लकड़ियों पर भले ही ओस पड़ी हुई थी किन्तु थीं सूखी, अतः शीघ्र ही आग पकड़ गयीं।

हुक्का पीते पीते मानकू की आंखें मस्तायी जा रही थीं। मुट्ठी पर से मुंह हटाकर धुआं छोड़ता हुआ वह बोला, "जगते यार, तू तम्बाकू मलने में है माहिर। तम्बाकू पीना तो कोई तुम से सीखे। कहां से लेते हो यह तम्बाकू ?"

"घर का है। सीरा खालस डालता हूँ। यहां तो कोई दुकानदार अच्छा सीरा बेचता ही नहीं। बेईमान जाने क्या कुछ मिला देते हैं सीरे में। मैं तो हमेशा शहर से लाता हूँ।" जगता अपनी प्रशंसा के दो बोल सुनकर फूल गया था। मानकू ने हुक्के की नली उसकी ओर घुमाई तो वह हाथ हिलाता हुआ बोला, "नहीं नहीं चाचा तुम पियो, मैं तो पीता ही रहता हूँ.....।"

"ओहो कितना कड़वा धुआँ है। दयार की लकड़ी लगा दी तूने ?"

धुएं का रुख चन्द की ओर था। वहाँ से उठकर आंखें मलता हुआ बाईं ओर सरक कर वह बोला,

"और हमारे वहां बाग़-बग़ीचे हैं", मानकू मुंह से धुआं छोड़ता हुआ

कहने लगा, "दरिया से यह बालन इकट्ठा कर के लाया था, सा अब तक चल रहा है। थोड़ी सी लकड़ियां आम की हैं।...पहले आम की ही लगाई हुई थीं..."

"चाचा, इस बार तो दरिया ने बहुत तबाही की है। हमारे गांव के खेतों का तो नक़शा ही बदल गया है। ऐसी एक बाढ़ और आ गयी तो बस।" अपनी गरदन खुजलाता हुआ चन्द बोला।

"एक बाढ़ की बात करते हो? थोड़ी सी कृपा इस दरिया देवता की और हो जाती तो हमारे गांव का सफ़ाया तो हो ही गया था। अब यहां के लोग रफ़ूजियों पर हंसते हैं, फिर हम भी रफ़ूजी बन जाते। तब इन्हें मालूम हो जाता कि बेघर होने का दुःख क्या होता है। सैंकड़ों घुमाओं जमीन बह गयी, जवान फ़सलें बरबाद हो गयीं, पशु मर गये, जो फ़सल बची वह भी किसी काम की नहीं और फिर इतनी कि घर की रोटी भी न चल सके। अब देखो - पशुओं के चारे में आधी मिट्टी होती है। हमारे साथ बेजबान पशु भी रुल गये हैं....." और मानकू अपनी बाँह पर उभरी नाड़ियों पर अंगुलियां फेरने लगा।

"कनक का भाओ भी तो सोलह रुपय हो गया है" लालू चौकीदार धूनी के गिरद की राख में अंगुली से लकीरें खींचता हुआ कहने लगा, "कोई घर होगा जिस में इन दिनों कनक हो। वरना सभी मक्की पर गुज़र कर रहे हैं। कोई महमान आ जाए तो भी कनक की रोटी नसीब नहीं होती।"

"क्यों कनक है क्यों नहीं। जितने दुकानदार हैं, कोई भी मक्की नहीं खाता।"

मानकू द्वारा इधर की हुई नली को थामता हुआ जगता बोला, "हमी हैं जिन्हें कनक नहीं मिलती। जितनी बेच सकते थ बेच दी। अगर इस फ़सल का लगान मुआफ़ न हुआ तो नानी याद आ जायेगी। बड़ी मुश्किल से घर खान को ही मक्की पूरी है, तो लगान कहां से आयेगा?"

दिन हो आया था। मुर्ग़ों की बांगें दिन की आहट में मद्दम पड़ती जा रही थीं। स्त्री पुरुष बाहर आ जा रहे थे। कुहासे के रंग से मालूम होता था कि सूर्य अभी पहाड़ों से ऊपर नहीं उठा है। पास वाले खेत में कोई हल चलाता हुआ किसान 'चुट्ट' गा उठा—

"तेरे लौंग दा पया लश्कारा
ते हालिआं दे हल छुट गय बल्लिये।....."

चन्द ने ध्यान से आवाज़ पहचानते हुए "कहा, यह देबो है शायद।"

"हां, वही है। यह सारी उम्र मस्त-मलंग ही रहेगा", जगता अपनी दाढ़ी खुजलाता हुआ बोला, "चन्द, यार तुम शहर में रहते हो, सौ पच्चास में ला दो इसे कोई। सुना पहाड़ म मिल जाती हैं!"

"वह दिन गये प्यारे!"

"सोहनया, जिन का सवेरा ही सांझ बन जाए उनका दिन आता ही कब है?" चन्द की बात के साथ बात जोड़ते हुए मानकू ने कहा, "रुपये आने पाई का जब तक यही खेल चलता रहेगा, ये बेचारे मस्त-मलंग ही रहेंगे। वरना क्या इनकी देह में जान नहीं या धरती ने अनाज उपजना छोड़ दिय हैं? अच्छे हैं बेचारे गा-वा कर अपनी पीड़ सहला लेते हैं....."

"चाचा तुम्हारी बाते मुझे शहर में भी बहुत याद आती हैं। मैं कई बार अपने साथी रिक्शावालों से तुम्हारी बात किया करता हूँ। उन्हों ने कई बार कहा है—अपने मानकू चाचा को कभी यहां लाओ यार। मैं कल जाऊंगा, तुम मेरे साथ चलो चाचा, दो चार दिन सैर कर आना!..."

"न यारा मैं नहीं जाता इतनी भीड़ में। शहर तो तुम छोकरों-बोकरों के लिये है। तुम लोग सुखी रहो, मेरी सैर ही सैर है।" अपनी फूटी हुई एड़ी को नाखुन से कुरेदते हुए मानकू बोला।

"तुम भी बहुत सील हो चाचा!" हल्की सी मुस्कान गालों पर लाते हुए चन्द ने कहा।

"जभी तो इस ने सील-मुर्ग़ पाल रखा था", कुंवारी धरती की तरह वीरान ओठों पर ज़बान फेरते हुए लालू बोला, "उस के बाद कोई कुक्कड़ नहीं रखा तुम ने मानकू चाचा ? भई वह कुक्कड़ था बड़ा बांका। क्या मजाल कि उसके होते कोई पट्ठी किसी और कुक्कड़ को पास भी फड़कने दे..."

"कुकड़...ऊँ...कड़ूँ...ऊँ...ऊँ..." मानकू के कानों में जैसे उसके मुर्ग़े की बाँग गूँज गयी। उसके साथ ही उसके दिमाग़ में उसके सील मुर्ग़ के गिरद चक्कर काटती मुर्ग़ियाँ कुड़...कुड़...कुड़ करने लगीं। वह धूनी पर बैठा हुआ दूर कुहासे में देखने लगा। फिर तहमद के पल्ले को घुटनों में इकट्ठा करता हुआ बोला, "दिनों की बात है बेलिया, वह दिन लौट आयें तो आज भी इस झोंपड़ी से वही बाँग सुनाई दे।"

धूनी की लकड़ियाँ जलकर कोयला हो चुकी थीं। वे बैठे २ आगे को सरक आये थे और घेरा तंग हो गया था। उनके हाथ कोयलों के ताप पर मचलते हुए कई बार आपस में टकरा जाते थे। चन्द उठकर चलने को हुआ ही था कि रास्ते की ओर से आ रहे देबो ने आवाज़ दी, "वाह भाई, यह क्या बात हुई भला, मैं आया और तुम चल भी दिये !"

"आ देबो यार, क्या हाल है तेरा ?" देबो के हाथ पर जोर से अपना हाथ मारते हुए चन्द बोला, "क्या बात है—हलों से बड़ी जल्दी चले आए ?"

चन्द के साथ ही धूनी पर बैठते हुए देबो ने कहा, "गाड़ी लेकर जाना है यार। मंगतराम है न वह महाजन, उसकी पांच बोरियाँ कनक की शहर पहुँचानी हैं।"

"अच्छा, अच्छा तो ठीक है...।" थोड़ी देर रुककर चन्द ने पूछा, "यार क्या मिल जाता है तुम्हें एक फेरे का ?"

"पांच छः रुपये मिल जाते हैं। बचते दो ढाई ही हैं। दो रुपए

एक फेरे के तो पशु ही खा जाते हैं। फिर शहर गये हों तो अपना भी जी कुछ न कुछ खाने को हो आता है..."

"चलो यार, कुछ न कुछ तो पल्ले पड़ ही जाता है ना !... वैसे भई कमाते हैं तो यह दुकानदार लोग ही कमाते हैं। बाक़ी हम सब तो परमात्मा के कर्जदार ही बैठे हैं।" जगते और लालू पर से दृष्टि घुमाता हुआ मानकू की ओर देखते हुए चन्द कह रहा था। मैं तो कहता हूँ—"किसान थोड़ा सी अक़्ल से काम लें तो काफ़ी सुखी हो सकते हैं एकाध बार तो तक़लीफ़ होगी ही, क्योंकि लगान और दूसरी कई छोटी-मोटी ग़र्जों के लिए नक़दी चाहिए। लेकिन फ़र्क़ काफ़ी पड़ सकता है। हम देखते हैं अनाज तब तक सस्ता रहता है जब तक किसान की कोठड़ी में पड़ा हो। जिस दिन वहां से निकलकर यह मण्डियों और गोदामों में चला जाता है, उसी दिन इसके दाम चढ़ जाते हैं। अगर किसान ही उसे अपने घर में जमा रखे और ठीक समय आने पर बाहर निकाले तो वह काफ़ी अच्छे दाम वसूल कर सकता है..."

मानकू उसकी बात के दौरान हां में सिर तो हिला रहा था, किन्तु जान पड़ता था जैसे उसके सिर के साथ २ एक बहुत बड़ा प्रश्न हिल रहा हो। वह अपने माथे की लकीरों को हाथ से सहलाते हुए बोला,

"तुम्हारा मतलब है कि पैदा करने वाले और भोगने वाले के बीच के बांध को तोड़ दिया जाये। यह मुश्किल है बीर मेरया, मैं तो देखता हूँ कि आज दुनियां का सारा ढांचा इसी बांध पर खड़ा हो गया है।" मानकू ने चन्द की बात को काफ़ी आगे से पकड़ लिया था। चन्द चुप चाप मानकू के मुँह की ओर देख रहा था। उसे मानकू की बात पर किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं हो रहा था। वह भली भाँति जानता था कि मानकू बात को ठीक गिरह से पकड़ लेता है। वह मानकू की तर्क-शक्ति का पूरी तरह क़ायल था। चन्द के साथ ही देबो और लालू भी ध्यान से मानकू की बात सुन रहे थे। जगता नयी चिलग भर कर पशुओं के लिए चारा लेने खेतों की ओर चला गया था। वे

तीनों खिचड़ी रंग की घनी मूंछों के नीचे हिल रहे मानकू के ओठों की ओर ध्यान दिए बैठे थे और मानकू कह रहा था,

"यह तो ठीक है कि पैदा करने वाला सुलग रहा है, भोगने वाला दुःखी है ; ठीक से है तो बीच की लकड़ी । और वह बीच की लकड़ी अब सब पर डण्डे का काम कर रही है ।... अभी कल नन्दू हरकारा अखबार की खबर सुना रहा था कि सरकार बदेस से गेहूँ मंगवा रही है । भई मुझे समझ नहीं आती कि इस देस के खेतों को आग लग गयी है या मिट्टी रेत बन गयी है ? जब तक किसान की देह में खून है, देस में अकाल क्यों पड़े...फिर अगर किसान अनाज अपने घर जमा करने लग जाए तो देख लेना सरकार भी तिलमिला उठेगी । और मैं तो सोचता हूँ—जिस दिन किसान को इतनी अक़्ल आ गयी, देस भूखा मर जाएगा । लेकिन भई, यह हो क्यों ? अरे, धरती का धर्म ही तो किसान का धर्म है । और अगर धरती ही दुनिया से बैर कमाने लगी तो उसे मां कौन कहेगा ?...वरना किसान का क्या है ? अधनंगा तो वह पहले से ही है...एक लिहाज से तुम्हारी बात भी ठीक है । लेकिन जिस दिन तुम्हारी बात ही ठीक हो गयी, तो किसान भी किसान नहीं रहेगा, बनिया बन जाएगा ; इसे पत्थर पर लकीर जान लो !" और अपनी आंखों के गिरद की झुरियों को अंगुलियों से मलता हुआ मानकू पंजों के बल बैठ गया ।

"यही क्या, तुम्हारी तो हर बात पत्थर पर लकीर होती है ।" चन्द ने गरम हाथ माथे पर फेरते हुए कहा ।

सूर्य शायद पहाड़ों से ऊपर उठ आया था । क्षितिज पर छाए हुए कुहासे के ऊपरी छोर कहीं २ सुनहरी किरण की बिछलन का आभास मिलता था । पास के खेतों में कुहासे के नीचे गेहूँ की नन्ही २ धुंधलाई और ओस में नहलायी फ़सलें दिखायी दे रही थीं । ज्यों २ दृष्टि-रेखा आगे बढ़ती, फ़सलें गायब होती जाती थीं, फिर कुहासा...गहरा कुहासा । लेकिन क्योंकि सूर्य की

सुनहरी किरणें दिखायी देने लगी थीं, इस लिए सहज में जान पड़ता था कि यह कुहासा भी बहुत देर टिकने का नहीं ।

मानकू के उठने के साथ ही धूनी की सारी सभा उठ खड़ी हुई। उस सरदी में धूनी पर से उठने को मानकू का मन तो नहीं चाह रहा था किन्तु सहसा उसे याद आ गया था कि घर में मक्की भी समाप्त हो गयी है, उसका भी तो कुछ करना होगा। सील मुर्ग़ की तरह गरदन झुकाये गांव की ओर जाते २ उसने सोचा कि और कुछ न हो सका तो अगली फ़सल के बीज के लिए बचाकर रखी हुई मक्की तो कहीं गयी नहीं।

सत्ति

मैं जिस बस्ती में रहता हूँ वह अमीरों की बस्ती नहीं है। न ही ग़रीबों की है। सब खाते पीते, पहनते और घरों में रहते हैं। दिखाई देता है सभी ने ज़िन्दगी के साथ समझौता कर लिया है और ज़िन्दगी अब उन्हें कुछ नहीं कहती। यह बात दूसरी है कि आये दिन कोई न कोई किरायादार अपने मकान-मालिक के विरुद्ध किराया कम करवाने के लिये कचहरी की धूल फांकता है, और कोई मालिक मकान पूर्व निर्धारित किराया वसूल करने के लिये अदालत का दरवाज़ा खटखटाता दिखायी देता है। लेकिन मैं अभागा इनके बीच रह कर भी ज़िन्दगी को जीने के तौर तरीके जान नहीं पाया। मुझे इस मकान में रहते कुछ ही साल हुए हैं। लेकिन लगता है—एक युग बीत गया इन दीवारों की गोद में सोते। इन दीवारों ने मेरी मुस्कानें देखी हैं तो मैं आंसुओं के धब्बे भी इन दीवारों की गोरी पेशानी पर देख रहा हूँ। अच्छे दिनों में इन्हों ने मेरा साथ न छोड़ा। अब तो यह चलन है मेरे दिनों का, कि कचहरी जाता हूँ, शाम को लौट आता हूँ। लोग समझते और जानते हैं कि मैं वकील हूँ। लेकिन मैं महसूस करता हूँ कि जिन की वकालत होनी

चाहिये उन्हें वकालत की जरूरत नहीं है। जरूरत जुर्म की जड़ उखाड़ फैंकने की है। और वह जड़ गहरे पाताल में है। खैर.....

पहले दिन जब मैं इस मकान में आया तो मैं ने अपने आप को कुछ उखड़ा २ सा अनुभव किया था। कचहरी जाता और लौटकर अपने कमरे में छत की ओर देख २ कर सोचता रहता—'यह उम्र और इतनी बड़ी घुटन ?... तो क्या इसी भर में उलझ कर उम्र बिता देनी होगी ?...'मेरी छत में कुछ चिड़ियां रहती थीं। दिन भर स्वच्छन्द उड़ानें लेकर वे रात को अपने नीड़ में चली आतीं। मैं उनके साथ अपनी स्थिति मिलाता रहता, जिस से मुझे समय के उस आवेग के लिये सांत्वना मिल जाती।

मेरे मकान की दहलीज पर बच्चे खेलते और ऊधम मचाते रहते। मैं कई बार उठकर उन्हें मना कर आता। वे उस समय टल जाते। थोड़ी देर बाद फिर उसी तरह उनका खेल मचने लगता। एक दिन वह आपस में एक दूसरे को गालियां दे रहे थे। उन की उन गालियों की भाषा और टेकनीक सुनते ही बनती थी। मैं ने खिड़की से देखा। गली में जरा हटकर कुछ स्त्रियां बैठी हुई थीं। वे उन गालियों को सुनकर हंस रही थीं। एक किसी की मां के साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित कर रहा था तो दूसरा उसकी बहन को अपनी रखेल बता रहा था। मैं अपने कमरे से बाहर निकलकर उनके पीछे जा खड़ा हुआ। सामने खाकी निकर और सफ़ेद बुनयन पहने खड़े लड़के ने मुझे देखा तो दहलीज पर दोनों टांगे फैलाकर बैठे हुए छोकरे को पंजाबी की एक मोटी सी गाली देकर भाग गया। उसके भागने पर उसकी पीठ की ओर देख २ कर दहलीज पर बैठे छोकरे ने गालियों की बौछाड़ लगा दी। दरवाजे के कोने के पास खड़ी बालिका अपलक मेरी ओर देख रही थी। मैं ने उसे कन्धे से पकड़ कर परे हटाया, "अरी जा, तू यहां क्या सुन रही है।' वह दहलीज पर से उतर कर गली में खड़ी हो गई और मेरी ओर घूरने लगी। दहलीज पर बैठे लड़के ने उठकर मेरी ओर देखा और खसियाना सा

हुआ वहां से चल दिया। वह बालिका उसी तरह मुझे देख रही थी। उसके रूखे बाल उसके माथे पर परेशां गिरे हुए थे। पूरे बाजुओं की मैली और ऊँची सी कमीज़ और एड़ियों के नीचे घिसटती सलवार उसने पहनी हुई थी। गोरा रंग और काली भंवों के नीचे मोटी २ आंखें..., कानों के आगे गालों के साथ छोटे २ से काले बाल उस के चेहरे की मासूमियत को बढ़ावा दे रहे थे। अब वह सामने वाली दीवार के साथ टेक लगाकर खड़ी मेरी ओर निहार रही थी। मैं ने जाकर उसे बांह से पकड़ लिया और अपने साथ दहलीज़ पर ले आया।

"क्या नाम है तुम्हारा ?" मैं ने ठोडी आगे से ऊपर उठाते हुए पूछा।

"सत्ति..." उसने आंखें नीचे किये उत्तर दिया।

"कहां रहती हो ?....."

"गली की उस नुक्कड़ पर..." कहकर वह अपने घर की ओर भाग गयी। गली की नुक्कड़ के पास पहुँचकर वह एक दरवाज़े में खड़ी होगई और मेरी ओर देखती हुई मुस्कराने लगी। मैं ने जान लिया कि वह उसी घर में रहती है और उसकी मुस्कान का उत्तर मुस्कान से देकर मैं अपने कमरे में लौट आया।

उसके कुछ ही दिनों बाद की बात है कि मैं शाम को कचहरी से लौटा तो सत्ति अपनी एक सहेली के साथ मेरे मकान की दहलीज़ पर बैठी गीटियां खेल रही थी। मैं उनके मध्य से दहलीज़ लांघ कर अन्दर चला गया।

"एह !....." पीछे से आवाज़ आई। मैंने मुड़कर देखा। सत्ति मेरी ओर गुस्सीली आँखों से देख रही थी।

"क्या बात है ?" मैं ने सत्ति की आंखों में देखते हुए पूछा।

"हमारे बीच से क्यों लांघें आप ?" सत्ति ने शिकायत भरी दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए कहा।

"अच्छा !.....तो मुआफ़ कर दो मुझे !"

"माफ़ कर दो मुझे....." मेरे शब्दों को अपने ढंग से दोहरा कर ओंठों के बीच मुस्कराती हुई सत्ति बोली। उसकी आंखों की नमी में मुझे

दीखा उसका गुस्सा धुल गया है। मैंने बढ़कर उसे बाजू से पकड़ कर उठा लिया।

"आओ तस्वीरें दूँ तुझे!" मैं ने उसका कन्धा थपकते हुए कहा। सत्ति नें अपनी सहेली की ओर टुक देखा, फिर मेरे साथ २ मेरे कमरे में चली आई। मैं ने उसे कुरसी पर बैठ जाने को कहा तो वह मेरी चारपाई के एक कोने पर अटक कर बैठ गई।

"तुम किस जमात में पढ़ती हो?" मैं ने उसके पास चारपाई पर बैठते हुए उसके सिर पर हाथ फेरकर पूछा।

"मैं स्कूल नहीं जाती। उसने मेरी ओर देखकर कहा।

"क्यों?"

"बापू भेजता ही नहीं। कहता था—रोटी कौन पकायेगा, कपडे कौन धोयेगा, घर का काम कौन करेगा?....."

"तुम्हारा बापू क्या करता है?"

"रिक्शा चलाता है?" सत्ति ने अपनी बांह खुरचते हुए कहा। उसके बाद मेरे लिये कोई गुंजायश न रही इस संबन्ध में कुछ पूछने की। मैं निरुत्तर सा उसके कानों के आगे झुके उसके चमकदार बालों को देखता रहा,

"अरी तुम रोटी पका लेती हो?"

"और नहीं क्या?..."मेरी आँखों में झांक कर सत्ति बोली, "अच्छा तस्वीरें दो फिर..."

मैं ने मेज के दराज से अखबारों—पत्रिकाओं में से काट कर रखी हुई कुछ तस्वीरें निकालकर उसके हाथ में पकड़ा दीं। वह उन्हें पलट २ कर देखने लगी।

"तुम आ जाया करो यहाँ सत्ति, तुम्हे पढ़ाया करूँगा।" मैं ने उसके कन्धे पर हाथ फेरते हुए कहा।

"अच्छा!" और तस्वीरों को इकट्ठा करके हाथों में संभालते हुए सत्ति बाहर को चल दी।

शाम को मैं खेलने के लिये क्लब जा रहा था कि रास्ते में सत्ति अपने घर के दरवाज़े में खड़ी मिली। मेरे पास जाने पर पहले तो उसने अपने घर के आंगन की ओर देखा, फिर मेरी ओर देखकर आंखों में मुस्कराती हुई बोली, "कहां जा रहे हैं आप ?"

"यूँही जरा घूमने खेलने,...चलोगी" कहते २ अनायास मेरी दृष्टि आंगन में चारपाई पर बैठकर बीड़ी पी रहे उसके बापू की ओर गई। सत्ति मुस्करा कर चुप रही। उसका बापू मुझे देख कर चारपाई से उठा और दरवाजे में चला आया। एक हाथ माथे पर ले जाकर उसने मेरा अभिवादन किया और बोला, "बाऊजी, सत्ति को आप ने तस्वीरें दीं यह बहुत तारीफ़ कर रही थी आपकी..."

"आप इसे स्कूल क्यों नहीं भेजते ? बहुत होनहार लड़की है...रोटी पकाकर स्कूल चली जाया करेगी !....." मैं ने सत्ति की ठोड़ी के नीचे अंगुलियां फेरते हुए उसके बापू से कहा।

उसने बीड़ी का एक कश लिया। लेकिन बीड़ी बुझ चुकी थी। बीड़ी के उस अधजले टुकड़े को अपने कान पर अटका कर वह कहने लगा,

"मैं एक बार इसे साथ लेकर स्कूल गया था। मास्टरनी से फ़ीस माफ़ कर देने को कहा। बाऊजी फ़ीस तो माफ़ क्या करनी थी। उलटे लगी रिक्शा-वालों को गालियां देने। किसी रिक्शावाले ने उसे छेड़ दिया होगा। सो हो गया यह धंधा ही उस की नजरों में बदमाशों का..."

"अच्छा, आप इसे स्कूल भेज दिया करें। फ़ीस मुआफ़ हो जाएगी... कितनी है फ़ीस ?" मैं डाढ़ी खुजला रहे सत्ति के बापू की ओर देखकर बोला। सत्ति मेरी सफ़ेद पतलून की कीज़ पर देख रही थी।

"पता नहीं कितनी है। दूसरे, घर का सारा सिलसिला भी इसी पर है। मैं ने सोचा पढ़ाकर भी क्या लेना है ? फिर बाऊजी अपनी औक़ात भी तो कोई चीज़ है....."

"खैर, प्राइमरी की फ़ीस क्या होगी यही कुछेक आने.....सो उसका क्या मुआफ़ करवाना है। आगे चलकर देखा जाएगा। आप इसे स्कूल भेज दिया करें!....." कहकर मैं ने सत्ति के चेहरे पर देखा और मुड़कर क्लब को चल दिया।

सत्ति ने स्कूल जाना शुरु कर दिया था। कई बार वह अपनी किताब लेकर मेरे कमरे में आकर पढ़ती रहती। अपनी क्लास में वह पहली पंक्ति की छात्राओं में गिनी जाती थी। एक बार अपनी कक्षा में प्रथम भी रही। स्कूल के वार्षिकोत्सव पर मैं भी आमंत्रित था। उसे इनाम मिला, मैं फूले न समाया। वह इनाम लेकर भागी २ मेरे पास आई और इनाम में मिली पुस्तकें तथा रुपयों वाला लिफ़ाफ़ा मेरी झोली में डालकर अपनी सहेलियों में जा बैठी। उस दिन सत्ति विवशताओं की छाती पर क़दम रखकर आगे बढ़ने की अपनी चेष्टा में सफल हुई थी। मेरे हर्ष की सीमा न थी। मैं उसे देख देखकर अन्दर ही अन्दर उसका भविष्य देख रहा था।

दिन बीतते गये, सत्ति आगे बढ़ती रही। उसकी एड़ियों के नीचे घिसटती सलवार टख़नों की ओर उठती गई, कमीज़ ढलक कर घुटनों के नीचे आ गई, पीछे कसकर बन्धी रहने वाली चोटी ढलक कर नीचे चली गई; अनायास माथे पर गिर आने वाले बाल सदा के लिये सर हो गये.....उसके रोम रोम में नये जीवन की झलक दीखने लगी थी।

एक दिन सत्ति भागी २ मेरे पास आई। उसके बाल माथे पर बिखरे हुए थे। चेहरा आंसुओं से नहा रहा था, ओठ कांप रहे थे.....

"क्यों क्या हुआ सत्ति?" मैंने घबराकर पूछा।

"ट्रक के साथ एक्सीडेंट से बापू की टांग टूट गई। वह बेहोश पड़ा है।"

"कहां?"

"हास्पिटल में....."

मैं ने सत्ति को कहा कि वह अस्पताल चले, मैं अभी आता हूँ। अस्पताल में सत्ति का बापू चारपाई पर बेहोश पड़ा था। उसके गिर्द कुछेक रिक्शावाले जमा थे। मैं ने उन्हें ज़रा हवा छोड़ देने को कहा। वे ज़रा २ पीछे हट गये। सत्ति मेरे पास खड़ी अपने बापू के माथे पर बह रहे खून को देख २ कर सिसक रही थी। मैं ने उसे दिलासा दिया कि वह चिन्ता न करे, उसका बापू जल्दी अच्छा हो जायेगा। पास खड़े लोग घायल को नहीं, सत्ति की ओर घूर २ देख रहे थे। या उनकी निगाहें मेरी ओर उठती थीं। उनकी निगाहों की ज़बां मैं समझ रहा था। मैं नें बाहर जाकर डॉक्टर से बात की। उसने बताया कि एक टांग बेकार हो गई है, काटनी पड़ेगी। बाकी, जान को विशेष ख़तरा नहीं है। मैं ने डाक्टर से कह दिया कि घायल मेरा अपना आदमी है, अत: उसकी देखभाल में कोई कसर उठा न रखी जाये। सत्ति के सम्बन्ध में मैं ने डाक्टर से कहा कि जवान लड़की का अकेले अस्पताल में रहना मैं ठीक नहीं समझता, कोई और प्रबन्ध हो सकता हो तो अवश्य कर दिया जाये। डाक्टर बोला,

"वकील साहब! आपका आदमी है, मैं इसे अपना ही समझूँगा! आप चिन्ता न करें। लड़की को साथ रहने की ज़रूरत नहीं, मैं सब ठीक कर लूँगा.....डूनॅट वॅरी ऐट ऑल!"

"थैंक यू डाक्टर, आई विल बि द परसन अण्डर ऑब्लिगेशन!" मैं ने बरामदे में खड़ी सत्ति को डाक्टर साहब के कमरे में जा बैठने को कहा और वापस लौट आया।

दो महीने सत्ति का बापू अस्पताल में रहा। उस बीच मैं कभी कबार उसकी ख़बर ले आता। सत्ति दिन में तीन चार बार अस्पताल जा आती। घर में अकेली होने के कारण उस ने अपनी एक सहेली को अपने हां बुला लिया था। उसके बाद तीनेक महीने उसका बापू घर में चारपाई पर रहा।

थोड़े ही महीनों बाद सत्ति स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर घर बैठ गयी

थी। उस दिन मैं कचहरी जाने के लिये सत्ति के घर के आगे से गुज़र रहा था कि उसके बापू ने मुझे आवाज़ दी, "बाऊजी ! बात सुनना ज़रा !"

मैं रुक कर उधर हो लिया। सत्ति के बापू ने परे सरकते हुए मुझे चारपाई पर बैठ जाने को कहा। मैं ने कचहरी का समय हो जाने की बात कही तो वह गरदन खुजलाता हुआ कहने लगा, "बाऊजी, यह सत्ति आपका कहा बहुत मानती है। मेरे कहे में तो बिल्कुल नहीं है।.....मेरी तो एक टांग जाती रही। पुराने कपड़े लत्ते बेचने का धंधा शुरु किया है। लेकिन उस से क्या होगा ? घर की ज़िम्मेदारी तो सारी अब इसी पर है .....यह इस तरफ़ ध्यान ही नहीं देती", सत्ति के बापू ने गरदन घुमाकर अन्दर झांका, फिर मेरी ओर मुड़कर कहने लगा,

"बस इसी तरह किताबों में सिर दिये रहती है। अब पढ़ाई बढ़ाई खत्म हो गयी। यह अब भी किताबों का पीछा नहीं छोड़ती.....मैं कुछ कहूँ तो खाने को दौड़ती है.....आप ही इसे कुछ समझाइये ना।"

मैं ने अन्दर देखा। सत्ति कोई पुरानी पत्रिका घुटनों पर रखे अधलेटी सी पढ़ रही थी। मैंने उसके चेहरे पर देखा। वह भी कनखियों से मुझे देख रही थी। अपने बापू की बात शायद उस ने सुन ली थी। मैं ने ज़रा आगे होकर कहा, "सत्ति, यह बापू क्या कहते हैं ?.....अब तो तू स्यानी हो गयी है। अब यह ज़िद तुम्हें अच्छी नहीं लगती। मुझे शिकायत दिलवाते अच्छी लगती है तू ?...बापू जैसे कहें, किया कर,...अच्छा !"

सत्ति पत्रिका से दृष्टि हटाकर चुपचाप मेरी आंखों में देखती रही। कुछ बोली न डोली। फिर उस ने क्षण भर के लिये दोनों आंखें बन्द कीं और खोलकर शून्य में देखती रही। मैं पलट कर कचहरी को चल दिया।

जाने मैं कब का चारपाई पर लेटकर पढ़ता २ सो गया था। आंख खुली तो देखा—बत्ती जल रही थी, मेरे हाथ में पकड़ी किताब मेरी छाती पर बेसुध सो रही थी। गली की ओर वाली खिड़की पर कोई नाखुन से टक टक...

ट...ट...ट...टक् टक् कर रहा था। मैं ने खिड़की खोली। बाहर गली में अन्धेरा था। मेरे कमरे की बत्ती की रौशनी में सत्ति मुस्कराती हुई धीमी सी आवाज़ मे बोली, "क्या बात है, बत्ती जलाकर सो रहे थे..."

"आओ !....."

"दरवाज़ा खुला है ?"

"ठहरो खोलता हूँ।" और मैं स्लीपर घसीटता हुआ दरवाज़े की ओर बढ़ा।

सत्ति मेरे पीछे २ कमरे में चली आयी। कुरसी की बजाए वह मेरे साथ ही चारपाई पर बैठ गई। उसके कपड़ों और बालों से 'ईवनिंग इन पैरिस' की महक आ रही थी। मैं ने आंखें मलते हुए उसकी ओर देखा। उस के चेहरे पर पाउडर की हल्की सी तै दिखाई दे रही थी। अपने लम्बे २ बालों को उसने ढीले से जूड़े में सहेज रखा था। मेरा ध्यान अचानक मेज़ पर पड़ी घड़ी की ओर गया। डेढ़ बज रहा था।

"इतनी रात गये कहां से आई ?..." मैं ने उसके माथे पर देखते हुए पूछा।

"आज पिक्चर चली गई थी। आ रही थी तो आपकी बत्ती जलती देख सोचा—आप जाग रहे हैं, मिलती चलूँ...और सुनाइये क्या हालचाल है आजकल ?...कहीं दिखाई ही नहीं पड़ते आप। बहुत काम रहता है शायद..." मेरे चेहरे पर देखते हुए सत्ति ने कहा, "फिर तो बापू ने कभी शिकायत नहीं की ?"

"नहीं, उसके बाद तो उन्हों ने कुछ नहीं कहा। तुम शिकायत का मौक़ा न दोगी तो उन्हें वहम थोड़े ही है....." मैंने उबासी लेते हुए कहा।

"आपको बहुत गहरी नींद आई थी शायद। मैं ने अच्छा नहीं किया जो आप को जगा दिया। .....अच्छा आप सो जाइये, मैं चलती हूँ।" कहकर सत्ति उठ खड़ी हुई। मैं उसकी गरदन पर झुके चमकदार काले बालों

के जूड़े और उसकी पीठ पर कमीज की सलवटों को देखता चारपाई पर लेट गया। वह मेरे कमरे के कोने में मेज पर रखे फूलदान से एक फूल निकाल कर अपने बालों में खोंसती हुई बाहर चली गई।

एक रात पानी ऐसा बरसा कि मैं अपनी आदत के अनुसार रात का खाना लेकर बाहर घूमने भी न जा सका। कमरे में पड़ा पढ़ता रहा। बाहर बादल गरज रहे थे और बिजली इस जोर से कौंध रही थी कि उस से आंख मिलाते दिल दहल जाता था। मैं खिड़कियां बन्द किये कम्बल ओढ़ कर कुरसी पर उकड़ूँ बैठा एक अंग्रेजी उपन्यास पढ़ रहा था। बादल जोर से गरजा और झड़ी फिर तेज हो गई। अनायास मेरी खिड़की पर खटखट होने लगी। मैंने आँख भर उधर देखा और पुनः पुस्तक पढ़ने लगा। बाहर झड़ी के साथ हवा चल रही थी। सोचा— हवा के कारण खिड़की बज रही है। लेकिन उसी क्षण खिड़की पर नाखुन बजने लगे। मैं पहचान गया। झट से खिड़की खोली। सत्ति बाहर दीवार के साथ कन्धे की टेक लगाकर खड़ी बारिश में भीग रही थी। मैं ने जाकर दरवाजा खोला सत्ति दीवार के साथ २ हाथ रखती मेरे पीछे २ अन्दर आ गई। मेरे कमरे में आकर पहले तो वह चुंधियाई आंखों से जल रही बत्ती की ओर एकटक देखती रही। फिर मेरी आंखों में देखती हुई मुस्कराने लगी। जोर से हँसती हुई बोली,

"आप मुझे इस तरह क्यों देख रहे हैं?" उसके बाद वह मेरी ओर बढ़ी और मेरा हाथ अपने दोनों हाथों मे लेकर जोर से दबाती हुई हँसने लगी, "..... क्या... बा...त है... व...की...ल साहेब ?" हँसते २ उसकी आखों के लाल डोरे और लाल हो गये। मैंने उसे दोनों कन्धों से पकड़कर सीधा खड़ा किया। वह अपने हाथ से मेरे बाल झटकती हुई फिर जोर २ से हँसने लगी।

"सत्ति! "मैंने उसके कन्धे जोर से झंझोड़ते हुए कड़क कर कहा, "तुम ने शराब पी है?.....कहां से आई हो इस वक्त?....."

उसके मुँह से शराब की गन्ध आ रही थी और उसका अंग २ शिथिल

हो गया था, आंखें अपने आप मुंदती जा रही थीं। उसने अपना हाथ मेरे कन्धे पर रखा और मेरे साथ लिपट गई। मेरी छाती पर हाथ फेरते हुए बोली "नहीं.....आप से झूठ नहीं बोलूँगी!.....पी.....नहीं, पिलाई गई है..."

मैं ने उसे कन्धों से पकड़कर परे हटाना चाहा। लेकिन उसकी जकड़ और मजबूत हो गई। मैंने उसके सिर को ऊपर उठाया। उसके ओठों के आस पास नीम गुलाबी लिपस्टिक की लाली फैली हुई थी। बरखा में भीगने के कारण उसके चेहरे पर पाउडर धुल चुका था। उसके कपड़े शरीर के साथ चिपके हुए थे। अचानक मेरा हाथ उसकी पीठ पर घूम गया। उसकी अंगिया खुली थी और उसके कन्धों पर अटकी भर हुई थी। मेरी गरदन पर अपनी शिथिल अंगुलियां घुमाते हुए सत्ति कहने लगी,

"लेकिन आप क्यों पूछते हैं?.....आप ही ने तो कहा था—तू अब स्यानी हो गई है। ज़िद करती अच्छी नहीं लगती.....बापू जो कहें, किया कर। उस दिन से यह मेरा धर्म हो गया.....कहा था या नहीं?..... तो अब बापू जिसके साथ भेजता है, चली जाती हूँ... .. फिर वह जो कहता है करती हूँ...आपके मुझ पर बहुत...ब...हु...त अहसान हैं वकील साहेब!...आप भी कुछ कहिये ना!...." वह मेरे कन्धे पर अपने गाल फेरती हुई कहती गई, "लेकिन आप कुछ नहीं कहेंगे... यह मैं जानती हूँ।" फिर वह मुझे छोड़कर दीवार के साथ लगकर खड़ी हो गई। मैं ने उसे बांह से पकड़कर चारपाई पर बैठाना चाहा और कहा कि वह गीले कपड़े उतार कर मेरी धोती पहन ले वर्ना सरदी लग जाएगी। वह मेज़ पर हाथ रखते हुए बाहर को जाने लगी—"थैंकयू वकील साहेब...मेरी...वेरी मच थैंकयू, आपकी यह सफ़ेद चादर खराब हो जाएगी.....सचमुच आपके मुझपर बहुत अहसान हैं .. मैं जन्मजरी आपको खराब नहीं करूँगी..." वह झूमती लड़खड़ाती हुई बाहर चली गई। बाहर खिड़की के पास आकर सींखचों को पकड़कर बोली,

"अब आप सो जाइये वकील साहेब...रात बहुत बीत गई है...सो जाइये !..." और दीवार के साथ २ हाथ रखती वह अपने घर को चली गई।

मैं सारी रात सो न सका। सत्ति ने मेरे मुँह पर एक ज़ोर का थप्पड़ लगाया था। मुझे अपने होने भर से नफरत हो रही थी। मैं चारपाई पर पड़ा बत्ती की ओर देखता रहा। ज्यों २ मैं बत्ती की ओर देखता, मेरी आंखों के सामने अन्धेरा छाता जाता। सत्ति !...सत्ति ने मेरे अहसानों (?) का बदला खूब चुकाया। सत्ति की अंगिया मेरे दिमाग में घड़ी के पेण्डुलम की तरह झूम रही थी।.....फिर दिमाग की किसी अन्धेरी गुहा में गिरजों और मन्दिरों के घण्टे ज़ोर २ से बजने लगे.....और एक ओर अलग खड़ी निर्वसना मरियम और राधा ललचाई नज़रों से उस पेण्डुलम की ओर देख रही थीं.....मैंने चाहा कि सत्ति आकर मेरे सिर पर एक जोर का पत्थर दे मारे ताकि मेरे दिमाग की नाड़ियां फट जायें और मेरे खून की एक २ बूँद दुनियां की हर सत्ति के माथे की बिंदिया बन जाये.....

स्कूल के वार्षिकोत्सव पर देखा सत्ति का भविष्य आज वर्तमान के कुहासे में कहीं खो गया है। आज सत्ति की बात कर रहा हूँ तो साक्षी दे जाऊँ कि सत्ति सचमुच बहुत स्यानी हो गई है। अपने बापू को शिकायत का मौक़ा नहीं देती। कभी ज़िद नहीं करती और हर रोज़ बापू का कहा मानती है।

पूनम के साये

"नरगिस के फूल लायी हूँ !"

डल के तीर खड़े हाऊसबोट की खिड़की के पास अपनी नाव खड़ी करते हुए मैंने कहा। खिड़की खुली थी और उस पर सफ़ेद रंग का रेशमी पर्दा गिरा हुआ था। कुमार अन्दर खिड़की के साथ सटकर अधलेटा सा कोई किताब पढ़ रहा था। मेरी आवाज सुनते ही उसने गरदन घुमाकर हाथ से पर्दा एक ओर हटाया,

"ओहो, रेशमां ! अन्दर चली आओ ..."

"नरगिस के फूल लायी हूँ तुम्हारे लिए !" मैं न फिर कहा।

वह झट से उठकर बरामदे में निकल आया। मैं नाव लेकर बरामदे के साथ लटक रही सीढ़ी के पास चली गयी।

"ऊपर तो आओ !" मेरे हाथ से नरगिस के फूलों का गुलदस्ता लेकर दूसरे हाथ से मेरी कलाई पकड़ते हुए वह बोला, "तो तू मेरी पसन्द भी जान गयी !...नरगिस के फूल...." और उसने गुलदस्ते को ज़रा सूँघा।

"नाव तो बांध लूँ !" मैं ने उसकी सूनी आंखों में झाँकते हुए कहा।

वह मेरी कलाई छोड़कर गुलदस्ता हाथ में थामे वहीं खड़ा रहा। मैं ने नाव को हाऊसबोट की लटक रही सीढ़ी के साथ बांधा और ऊपर चढ़ गयी। वह मुझे अपने साथ उसी कमरे में ले गया जहां चारपाई पर अधलेटा वह किताब पढ़ रहा था। अब किताब चारपाई पर औंधी पड़ी थी। उस ने चारपाई पर बिछी सफ़ेद चादर की सलवटों को हाथ से सहलाते हुए मुझे बैठ जाने को कहा। मैं ने वहां बैठकर समूचे कमरे को एक नज़र देखा। कीलियों पर उसके तरह २ के कपड़े लटक रहे थे। शेष सब साधारण था। हमारे हाऊसबोट की तरह सजा सजाया वह बोट था। मुझे उस समय अपना बोट बहुत याद आया। दिल्ली की किसी मेम साहब के कहने पर अब्बा ने उस पर सफ़ेद रंग करवाया था, और नीम आस्मानी रंग के रेशमी पर्दे, छत पर रंगारंग फूलों के गुलदस्ते.....। मैं सोच रही थी कि यदि आज हमारा बोट होता तो मैं कुमार को वहां ले चलती। सभी ख़याल आया—यदि बोट आज हमारे पास होता तो मेरी बड़ी बहन जानां कैसे ब्याही जाती ? जफ़र तो चाहता भी न था। लेकिन उसका बाप तो हाऊसबोट लेकर भी नहीं मानता था। वह तो केसर के दो खेतों की भी मांग कर रहा था।

"अरी क्या सोच रही हो ?" मेरी कोहनी हिलाकर कुमार बोला।

तब मुझे ध्यान हुआ कि मैं एक टक खिड़की से बाहर डल की लहरों को निहारती रही हूँ। एकाएक मेरा मस्तिष्क डल के पानी की तरह शफ़ाफ़ हो गया।

" कुछ नहीं, तुम्हारा कमरा देख रही थी।" मैं ने कहा।

"कमरा तो यह है। वह तो डल का पानी है।"

" पानी है तो क्या हुआ। अच्छा नहीं लगता तुम्हें डल का पानी ?"

" क्यों नहीं ? बहुत अच्छा लगता है। बिल्कुल तेरी आंखों का

नमी की तरह।" कहकर उसने मेरे बालों को एक मीठा सा झटका दिया। उस समय उसका वह झटका मेरा मन लील गया। जब बराम्दे में खड़े उस ने मेरी कलाई पकड़ी थी, उस समय भी मेरा रोम २ सिहर उठा था। मेरे प्राण तन में एक मीठी सी झुनझुनाहट होने लगी थी। मैं उसका हाथ अपने हाथों में लेकर उसे सहलाने लगी। वह एकटक मेरे चेहरे पर देख रहा था। फिर उस ने सामने तिपाई पर रखा हुआ गुलदस्ता उठाया और उस में से नरगिस के तीनेक फूल निकाल कर मेरे बालों में खोंस दिये।

"अरे अरे.....रे.....रे..... यह क्या कर रहे हो बाबूजी?" मैं अपने बालों में खोंसे गये फूलों की ओर हाथ ले जाते हुए कुनमुना कर बोली।

"फिर बाबूजी?..." उसने दायें कन्धे पर से आगे को लटक रहे मेरे बालों को खींचते हुए कहा।

कुमार के साथ मेरी यह तीसरी मुलाकात थी।

× × ×

पहली बार उस से मेरा सामना नेहरू पार्क की सीढ़ियों पर हुआ था। मैं सीढ़ियों पर फूल बेच रही थी और कुमार शिकारे पर बैठकर वहाँ सैर करने आया था। रंग से वह कश्मीरी जान पड़ता था, ढंग से विज़िटर। लाल गोरा रंग, छोटे छोटे से सुनहरी बाल, काली २ भंवें...उस दिन भी उसने बोस्की की कमीज़ और सफ़ेद पतलून पहन रखी थी। उसका शिकारा मेरे पास ही पार्क की सीढ़ियों के साथ आकर रुका। शिकारे वाले माझी के पैसे चुकाने के लिए उसने पतलून की जेब से दो रुपये का नोट निकाला। मैं उसकी ओर देख रही थी क्योंकि वहां घूमने आने वाले बिज़िटर ही मेरे गजरों के ग्राहक थे। माझी के पास बाक़ी नहीं था। वह नोट लेकर मेरे पास आया। इतने में एक ख़ातून दो गजरे लेने के लिए मेरे सामने आ खड़ी हुई। मैं ने उस माझी को कह दिया कि दो रुपयें की रेज़गारी मेरे पास नहीं है। वह

नोट लेकर पास बैठे माझियों के पास गया । उसी समय कुमार वही नोट लेकर मेरी दायीं ओर आ खड़ा हुआ । मैं ने तब सामने खड़े बाबू से मोतिये के दो गजरों के पैसे वसूल कर कुमार की ओर कनखियों से देखा । उसने नोट मेरे आगे बढ़ा दिया, "मोतिये का एक गजरा ।"

मैं ने उधर पलट कर देखा । वह अनिमेष मेरी ओर देख रहा था ।

"गजरा चाहिए या माझी को देने के लिए नकदी ?" मैं ने उसकी पलकों की ओर देखते हुए कहा ।

उसकी भंवें ज़रा हिलीं और वह उसी तरह मेरी ओर देखता हुआ बोला, "मोतिये का एक गजरा ।"

"इतनी सी बात के लिए भी झूठ बोलते हो बाबू जी ।"

"तुम्हें इस से मतलब । तुम पैसे लो और गजरा दो ।"

"और अगर न दूँ तो ?"

"तो तुम्हारी मरज़ी ।" और उसके हाथ में थमा नोट अनायास शिथिल पड़ गया । मैं ने नोट पकड़ लिया । एक रुपये का नोट और बाक़ी नकदी गिन कर उसके हाथ में थमा दी । वह वहां खड़ा मेरी ओर देखता रहा,

"और गजरा ?" ज़रा झुक कर वह बोला ।

"एक रुपया सोलह आने दिए हैं पूरे, गिन लो बाबू जी ।"

उसने पैसे गिने नहीं और एक दुअन्नी मेरी टोकरी में फूलों पर फेंक कर चल दिया । मैं ने दुअन्नी उठाकर उधर मुड़ कर देखा,

"ओ बाबूजी, यह ले जाओ अपनी दौलत ! मैं फल बेचती हूँ, बख्शीश नहीं लेती..."

वह रुक गया और मुड़ कर एक टक मेरे चेहरे पर देखने लगा । मैं ने उठकर दुअन्नी उसे दे दी । वह उसी तरह मेरी ओर देख रहा था । मैं ने

झील के पानी का दो अंजलियां लेकर फूलों पर छिड़कायीं। उसने वह दुअन्नी पास ही पानी में पांव लटका कर सीढ़ियों पर बैठे हुए एक कश्मीरी बच्चे को दे दी। वह बच्चा वहां से उठकर किलकारियां भरता हुआ पार्क की ओर भाग गया और मैं सामने खड़ी युरोपियन मेमसाहब के लिए मोतिये के गजरों के नीचे रखा चम्पा का फूल निकालने लगी।

× × ×

मैं हर रोज नेहरू पार्क फूल बेचने जाया करती थी, क्योंकि शाम को डल की सैर को निकले विज़िटर लोगों का वहां जमघट रहता था। तरह २ की वेशभूषाओं और आकृतियों का वहाँ मेला सा लगा रहता था। इस दिशा में उस पार्क को विभिन्न संस्कृतियों का संगम भी कह लिया जा सकता था। *प्रत्येक विज़िटर वहां पूरी सजधज में होता था। सीज़न के दिनों में डल में* भी जीवन और यौवन की तरंगें दिखायी देती थीं। उसके बाद कई दिनों तक कुमार मुझे पार्क में दिखायी नहीं दिया। जाने क्यों, मैं नाव लेकर फूल बेचने के लिए जब भी पार्क में पहुँचती, या फूल बेचकर घर लौटने के लिए नाव की रस्सी खोलने लगती, तो मेरी निगाहें उसकी खोज में पार्क में जमे जमघट में घूम जातीं। फिर, एक दिन मैं फूल बेचकर जल्दी खाली हो गयी। पार्क के आस-पास, दूर २ तक बिजली की बत्तियाँ जगमगा रही थीं—डल के किनारे २ सड़क पर गोलाकार बड़ी २ बत्तियां, ऊपर शंकराचार्य के मन्दिर वाली उपत्यका की रौशनियां, डल की छाती पर तैर रहे शिकारों और स्टीम बोटों की बत्तियां, ऊपर आकाश के दीयों की दीवाली; ठीक ऐसी ही एक दुनियाँ डल के गर्भ में आबाद थी, बल्कि ऊपर की अपेक्षा नीचे की दुनिया कहीं हसीन जान पड़ती थी। मैं ने फूलों वाली खाली टोकरी पास ही बंधी अपनी नाव में फैंकी और पार्क में चली गयी। पार्क में खूब गहमागहमी थी। इस बार कश्मीर में विज़िटर लोग बहुत संख्या में आए थे। समूची कश्मीर घाटी में उसकी खोई जवानी लौट आई दिखायी देती थी। अब कश्मीर के

बीते दिन लौट आये हैं, हमारे लोगों का ऐसा ख्याल था। मुझे अब भी दंगों के दिन भूले नहीं हैं (और शायद प्राण रहते कभी भुला सकूँगी भी नहीं) जब किसान ने किसान का खून पिया, माझी ने माझी की पीठ में छुरा घोंपा और डल की हर बूँद लहू का क़तरा दिखायी देने लगी थी। तब तो यह हाल हो गया था कि नमक के बिना हम लोगों की ज़बानें बाहर को आने लगीं थीं। हम हैरान थे कि वहशत का यह नंगा नाच क्यों खेला जा रहा है? तभी समझने में देर न लगी कि नृत्यरत इन पुतलियों की डोरियां किसी और के हाथों में हैं।

लेकिन अब तो पार्क को नया जीवन मिल गया था। विज़िटर स्त्री पुरुष यहां वहां घूम फिर कर फ़ज़ा का मज़ा ले रहे थे। कुछ नीचे हरी घास पर बैठे अपनी बातों में मस्त थे, कुछ ऊपर रेस्तरां में बैठे आस पास डल का दृश्य देख रहे थे; और कुछ शिकारों में डल की सैर कर रहे थे। मैं पार्क के एक लॉन में से गुज़र रही थी कि सामने रेलिंग के पास बिजली के खम्बे के साथ कन्धे की टेक लगाकर खड़ा कुमार दिखायी दे गया। अनजाने एक पुलकन मेरे रोम २ में कौंध गयी। मैं भी उसके पास जाकर रेलिंग के साथ खड़ी हो गयी। वह सामने झील में तैर रहे स्टीमबोट की ओर टिकटिकी बांध कर देख रहा था। सहसा स्टीमबोट बेदिंग-क्लब के बोट के पास जाकर रुक गया। कुमार ने उधर से निगाह हटाई और गरदन घुमाकर रेस्तरां की सीढ़ियां चढ़ रही एक बुर्क़ापोश युवती की ओर देखने लगा।

"उस दिन नाराज़ हो गए थे बाबू जी!" मैं ने सहसा कह दिया।

उसने नज़र घुमाकर मेरी ओर देखा,

"ओहो, तुम हो...कहो!" वह खम्बे के साथ से हटकर खड़ा होता हुआ बोला।

"मैं ने कहा-आप उस दिन नाराज़ हो गए थे ना!"

"अरी वाह, मैं तो उलटे खुश हुआ था" पतलून की एक जेब में

हाथ डालते हुए वह बोला।

"मैं ने उस दिन आपकी बख्शीश क़बूल नहीं की ना बाबू जी!"

"तुम ने नहीं की, यही तो मुझे अच्छा लगा। वरना..."

"वरना यह देश तो पलता ही बख्शीश पर है, यही ना?"

मैं ने जैसे उसके मुँह की बात छीन ली हो। वह अवाक् मेरे चेहरे पर देखने लगा, जैसे उसे विश्वास न हो रहा हो कि मैं कश्मीरी हूँ और फूलों के गजरे बेचती हूँ। मेरे पास ही रेलिंग के साथ टेक लगाकर खड़े होते हुए कुमार बोला, "इस छोटी सी उम्र में मैंने भी ज़िन्दगी काफ़ी जी है। लेकिन दिखायी देता है ज़िन्दगी की नब्ज़ को तुम ने अच्छी तरह टटोला है...ख़ैर, मुझे स्वाभिमानी लोग पसन्द हैं।"

"फिर एक झूठ?" मैं ने मुस्कराते हुए उसकी आंखों में झांक कर कहा, "अगर ऐसी ही बात होती तो उस दिन आप वह दुअन्नी उस छोकरे को बख्शीश क्यों देते। इसका मतलब तुम लोग चाहते हो कि हमारे हाथ तुम लोगों की ओर लपकते रहें। वरना सोचिये तो ऐसे में उस बच्चे का स्वाभिमान पनप सकता है कभी?..."

उसका चेहरा धुंधला सा गया। वह मेरे चेहरे पर देखता रहा और उसके शिथिल होंठ जैसे अपने आप हिल उठे,

"विश्वास नहीं होता कि तुम कश्मीरी हो।"

मुझे लगा जैसे उसे स्वयं अपनी ही बात पर विश्वास नहीं हो रहा।

"तुम्हें होना भी नहीं चाहिये बाबू जी," मैं ने अपने माथे पर गिर आए बालों को हाथ से पीछे करते हुए कहा, "अगर मैं ने तुम्हें दो आने का गजरा देकर दो पैसे की बख्शीश के लिए तुम्हारे सामने हाथ फैलाया होता तो तुम्हें पूरा यकीन हो आता। क्यों ठीक है ना?"

वह एकाएक मुस्करा दिया। तब मेरे कानों में मेरे शब्द गूंज गए। मैं ने जाना मैं अजाने उसके साथ आत्मीयता पर उतर आई हूँ। मैं अपने में

कुछ सकुचा सी गयी और रेलिंग से नीचे डल के पानी म शंकराचार्य के मन्दिर की बत्ती देखने लगी।

"बुरा न मानो तो तुम्हारा नाम पूछ सकता हू ?"

मैं ने गरदन उठाकर उधर देखा। वह कमर पर दोनों हाथ रखे मेरी ओर देख रहा था, एक सीमा तक घूर रहा था।

"मेरा नाम रेशमां है। और तुम्हारा ?"

"कुमार !...क्या सभी कश्मीरी लड़कियों का नाम रेशमां ही होता है ?" उसने मुस्करा कर पूछा। मैं हंस दी, "और अगर यही सवाल तुम से पूछूं तो ?... यहां कई तरह के कुमार आते हैं—विनोद कुमार, अजीत कुमार अशोक कुमार, दिलीप कुमार ; और जाने क्या २ कुमार !"

मेरी बात पर वह जोर २ से हंसने लगा और उसने एक हाथ मेरे कन्धे पर दे मारा, "मेरा नाम कुमार स्वामी है।"

"कुछ भी हो, कुमार तो हो ना !" मैं ने कहा। वह फिर हंसा, "तुम भी खूब हो।"

पार्क में रौनक धीरे २ कम होती जा रही थी। डल में स्टीम बोट चलने बन्द हो गए थे। ऊपर रेस्तरां में तीनेक व्यक्ति रह गए थे, बाप हाल खाली था। पार्क के बेंचों पर कुछ लोग बैठे बातें कर रहे थे या चार पांच जोड़े लॉन में बैठे हुए थे।

"तुम्हें जल्दी न हो तो यहां बैठ जायें, या ऊपर रेस्तरां में चलकर चाय पियें !" कुमार मेरी ओर देखकर बोला।

"यहीं बैठ जाते हैं। मेरे साथ रेस्तरां म जाते तुम अच्छे लगते हो ?"

"अरी वाह, यह क्या बात हुई, कोई क्या कह सकता है भला ?"

"तुम्हें तो कुछ नहीं कह सकता। तुम तो विज़िटर हो बाबू जी, कल को यहां से चले जाओगे। मुझे तो कल भी इन्हीं सीढ़ियों पर फूल बेचने हैं।"

वह कभी मेरे होंठों की ओर और कभी मेरे माथे पर देख रहा था।

बोला, "अच्छा, चलो न सही। बेंच पर बैठ जाते हैं।" और वह बेंच की ओर बढ़ा। ज़रा परे सरकते हुए हाथ के इशारे से उसने मुझे बैठ जाने को कहा। मैं बेंच के पास नीचे घास पर बैठ गयी। मुझे अपने में ही उसके साथ बैठते कुछ अच्छा न लग रहा था। उस ने मेरी ओर हाथ बढ़ाया कि मैं ऊपर बैठ जाऊँ। उसकी आंखों में निमंत्रण नहीं, आग्रह की नमी झलक रही थी, जिसको मैं कदाचित् अस्वीकार न कर सकती थी। मैं वहाँ से उठकर उसके साथ बेंच पर जा बैठी। बैठते हुए मैं ने इधर उधर देखा। परे सड़क की मण्डेर पर और पार्क की सीढ़ियों पर कुछ माझी बैठे बातें कर रहे थे। शायद पार्क में घूम रहे विजिटरों का उन्हें इन्तज़ार था। मैं उधर से ध्यान हटा कर सामने की ओर देखने लगी। चारों ओर खामोशी छायी जा रही थी। कभी २ डल में किसी चप्पू के चलने की छप-छप ध्वनि सुनाई देती और कभी माझियों के आपस में बातें करने की।

"तुम रहती कहां हो?" सहसा कुमार ने पूछा।

"उधर डल के किनारे हमारे खेत हैं। वहीं हमारा घर है।"

"तो अब वहां जाओगी इस अन्धेरे में?"

"अन्धेरे का तो कोई डर नहीं। वैसे आज अपनी मौसी के हां रहूंगी। जहलम में उनका अपना हाऊसबोट है। ...तुम कहां ठहरे हो बाबूजी?"

"यह तो बाद में बताऊँगा, पहले तुम वायदा दो कि आगे से मुझे बाबूजी नहीं कहोगी।" उसके होठों पर हल्की सी मुस्कान फैल गयी थी। मैं न ज़रा रुक कर उसकी आंखों में देखते हुए कहा,

"अच्छा, नहीं कहूँगी...बस अब खुश हो गए बाबूजी!" मैं ने कहा और उसने मेरी कलाई पकड़ कर अंगुलियों को ज़ोर से मसल दिया।

"अच्छा २ अंगुलियां क्यों तोड़ते हो, नहीं कहूँगी...अब बता दो कहां ठहरे हो!"

"यहां पास ही डल के किनारे 'पम्पोश' नाम के हाऊसबोट में।"

"अच्छा 'पम्पोश' ! मैं जानती हूँ...पिछले साल बम्बई का एक मेमसाहब वहां आ कर रही थीं। मैं उसे फूल देने जाया करती थी। अहमद है ना उसका मालिक ?"

"हां हां, बिलकुल ठीक। कभी आओ गी वहां ?"

"आऊँ गी !"

वह कलाई पर बन्धी घड़ी की ओर देखकर बोला, "दस बज रहे हैं। अब वापस चलना चाहिए !"

"मुझे भी उधर से ही जाना है। कहो तो अपनी नाव में तुम्हें वहां छोड़ती जाऊँ। लेकिन हमारी नाव जरा यूँही होती है।"

"वाह, ऐसी क्या बात है, चलो तुम्हारी नाव पर ही चलूँगा।" कहकर वह उठ खड़ा हुआ और हम साथ २ घाट की ओर चल दिए।

डल में सड़क की बत्तियों का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था और मैं चप्पू चलाती हुई नाव खेती जा रही थी। कुमार मेरे सामने बैठा मेरी चप्पू चलाती बांहों को देख रहा था। 'पम्पोश' के पास जाकर मैं ने नाव रोकी। वह हाऊसबोट के बरामदे में चढ़कर खड़ा हो गया और खामोश मेरी ओर देखता रहा। मैं भी अपलक उसकी ओर देखती रही। हमारी निगाहों की खामोशी ने जैसे एक दूसरे को विदा कही और मेरे हाथ जैसे अनजाने चप्पू चलाने लगे। थोड़ी दूर जाकर मैं ने पीछे मुड़ कर देखा—वह उसी तरह बरामदे में खड़ा अनिमेष मेरी ओर देख रहा था। यह कुमार से मेरी दूसरी मुलाकात थी। आज ध्यान आता है—कैसा निमंत्रण, कितना आग्रह था उस मूक-विदा के क्षण में।

× × ×

उस दिन मैं नरगिस के फूल लेकर गयी थी उसके लिए। क्योंकि एक रोज मैं 'पम्पोश' के पास से नाव में जा रही थी। सोचा—कुमार से मिलती चलूँ। हाऊसबोट की खिड़कियां बन्द थीं। बरामदे में चढ़कर देखा—उस

कमरे को क़ुफ़ल लगा हुआ था। अहमद को आवाज़ दी और उससे पूछा कि इस कमरे वाले बाबू कहां हैं। उसने बताया, "कुमार बाबू आज सुबह बुल्लर-लेक देखने गए हैं।...रेशमां, तुम्हीं उन्हें नरगिस के फूल क्यों नहीं दे जाया करती। कुमार बाबू नरगिस के फूल बहुत पसन्द करते हैं। उन्हों ने कई बार मुझे कहा। लेकिन जब से वे मेरे बोट में आए हैं, मैं सिर्फ़ दो बार ही उनके लिए नरगिस के फूल ढूँढ कर ला सका हूँ। तुम्हारी फुलबगिया में नरगिस है तो?..."

'हां, है क्यों नहीं। ज़रूर लाऊँगी। उन्हों ने मुझ से कहा ही नहीं।"...

हमारी तो आदत है और जाने क्यों 'बाबू जी' शब्द से कुमार को चिढ़ थी। शायद उसे इस शब्द में दुराव का भाव दीखता था।

"रेशमां, तुम्हारे ये रेशमी बाल मुझे बहुत अच्छे लगते हैं...और ये नरगिसी आंखें!" मेरे बालों पर हाथ फेर कर मेरे चेहरे को अपनी दोनों हथेलियों में लेकर कुमार ने कहा। मैं कुनमुना कर ज़रा परे हट गयी।

"तुम्हारे बालों में नरगिस के फूल बहुत सुहाते हैं।" वह पुनः मेरे बालों को हाथ में मसलते हुए बोला।

"यहां पड़े २ क्या कर रहे हो? बाहर घूमने नहीं जाओगे?" मैं ने अपने बालों पर अंगुलियां घुमाते हुए कहा।

"तुम चलोगी साथ?" उस ने मेरी आंखों में देखते हुए मेरी अंगुलियों में अंगुलियां डाल कर कहा।

"तुम चाहोगे तो क्यों न चलूँगी...कहां चलोगे?"

"जहां भी कहो!"

"चश्माशाही?"

"जैसे तुम चाहो।" कह कर वह उठा और कपड़े बदलने लगा,

"यहां से कोई शिकारा पकड़ लेंगे। वरना चश्माशाही तक नाव खेते

तुम थक जाओगी

मेरे थकने की बात नहीं, तुम्हें नाव में तकलीफ़ न हो, क्योंकि शिकारे सा आराम तो नहीं ना इस में।"

"अरे !...तो ठीक है। नाव में ही चलेंगे।" जरा झुक कर पतलून ठीक करता हुआ वह बोला। उस दिन वह सफ़ेद पतलून और बोस्की की कमीज पहने था। पांव में उसने अंगूठे की चप्पल पहन रखी थी। कमीज के बाजू उसने कुहनी से ऊपर सहेजे हुए थे। चप्पू चलाते हुए उसके बाजुओं की मांसपेशियां मुझे बहुत खूबसूरत लग रही थीं। मैं उसकी ओर देख कर मुस्कराने लगी।

"क्या बात है हंस रही हो ?"

तुम बहुत अच्छे माझी बन सकते हो। चले आओ यहां !"

"कबूल लोगी मुझे ?" उसने होठों में मुस्करा कर कहा। मैं ने आंखें भींचकर उसे झिड़क दिया, "हीश...बड़े वह हो तुम बाबूजी !"

उसने चप्पू को नाव में रखकर मेरी गरदन की ओर हाथ बढ़ाया। मैं कूद कर पीछे चली गयी। नाव डगमगान लगी।

"अरे अरे...नाव डूब जाएगी।" कुमार दोनों हाथों से नाव पकड़ता हुआ बोला। मैं ने नाव के दोनों ओर पानी में हाथ डाल कर नाव को स्थिर किया और पुन: उसके सामने जा बैठी। उसने मेरे बालों को हाथ से झटकते हुए कहा,

"तो बुलाती क्यों हो ?"

"जानती जो हूँ कि तुम नहीं आओग।"

उसमे मेरी ठोड़ी को हिलाकर मेरे बालों पर हाथ फेरा और धीरे २ नाव खेने लगा।

फिर वह अपने देश पंजाब की बातें करता रहा। मेरे देश कश्मीर की बातें सुनता रहा। कश्मीरी के नाते उसके दिमाग में पंजाब जाकर मजदूरी

करने वाले हत्तोओं का ही चित्र था। उसका कहना था कि जब उसने कश्मीर न देखा था, वह कल्पना भी न कर सकता था कि कश्मीरी लोग खूबसूरत भी हो सकते हैं। मैं समझती हूँ—जो लोग कहते हैं कि खूबसूरती क्या जो सिर चढ़ कर न बोले, महज दिमागी बात करते हैं। पैसे पैसे के लिए देह तोड़ने वाले की क्या खूबसूरती और क्या बदसूरती। वहां खूबसूरती घुट के नहीं रह जाती? कुमार का कहना अक्षरशः सत्य था।

"तुम्हारे घर में और कौन २ हैं रेशमां?" चप्पू के साथ उलझे जाले को उतारने के लिए चप्पू को अस्त व्यस्त पानी में मार कर उस ने पूछा।

"दो छोटे भाई हैं, एक बड़ी बहन है, लेकिन वह ब्याही जा चुकी है और ससुराल रहती है, और माँ है.....तीन साल हुए अब्बा फ़ौत हो गये।.....एक छोटा भाई खेती का काम करता है, मैं उसका हाथ बटाती हूँ। इन सरदियों में वह भी मजदूरी करने जा रहा था। उसे बड़ी मुश्किल से रोका।" और इसके बाद जब मैं ने उसे बताया कि हम केसर भी अपने खेतों में बोते हैं तो वह हैरानी से मेरी ओर देखने लगा।

"अरी तब तुम्हें फूल बेचने और तुम्हारे भाई को मजदूरी करने की क्या जरूरत है? केसर तो बहुत महंगी चीज है।" उसने कहा और मैं भवें तरेर कर बोली, "तुम बनिया हो क्या?"

"अरी वाह, मैं तो खुद एक किसान का बेटा हूँ।" मुझे उसकी बात पर यकीन न आ सकता था। मैं सोचने लगी—वह देश कैसा होगा जिस में किसान के बेटे ऐसा पहनते हैं, ऐसा खाते पीते हैं? मैं ने सोचा कि अगर वह सचमुच किसान का बेटा होता तो उसने यह बात मुझ से न कही होती। किसान के दुःख-दर्द और कलेजे को जानने वाला कभी ऐसी बात नहीं कह सकता। मेरी धारणा है कि जिस दौर में हम जी रहे हैं वह बनियों का दौर है। किसान का दौर अभी आने को है। कहते हैं उसकी पौ फट चुकी है... देखो!

उसके बाद उसने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए बताया कि वह तो किसान ही उसे मानता है जिसकी अपनी धरती है। वह मां बाप का इकलौता बेटा है। घर की खेती अच्छी है। इसी से वह पढ़ लिख गया है। किसान के अधिकार पर भी लगान लग जाए?... वरना, उसने बताया कि किसान की हालत उसके देश में भी वैसी ही है। मजदूर-किसान की तो पूछो ही कुछ न। लेकिन उसे विश्वास था कि अब रैन अंधेरी बीत चुकी है। और यह झुटपुटा भी बहुत देर टिकने का नहीं। किसान सदियों से धरती का पहरा दे रहा है। अब कुछ अरुणाई दीखने लगी है। और वह इसका श्रेय किसान की सदियों की घुटन को ही दिया चाहता था।—ऐसी ही बातें मैं ने बहुत सुनी हैं, अपनों से भी और दूसरों से भी। किन्तु ऐसे में मुझे हमेशा अपने अब्बा की बात याद आ जाती है। अब्बा कहा करते थे—रेशमां, ये सब बातें झूठ हैं। किसान की तक़दीर सोई हुई है। उसे जगाएगी तो किसान की हल-हंसिया ही जगायेगी। और जब किसान की तक़दीर जगी, यह दुनिया बदल जायेगी... ...यह दुनिया बदल जायेगी रेशमां! मैं ने कुमार से अब्बा की बात कही तो वह बोला, "तुम ने मेरे विश्वास की पुष्टि ही की है। लगता है तुम लोगों ने मर्ज़ की जड़ ढूँढ पकड़ी है। मानना होगा कि अब यह मर्ज़ चार दिन की ही महमान है।"

चश्माशाही सामने दिखायी दे रहा था। मैं ने नाव झील के किनारे एक वृक्ष से बाँधी और हम चश्माशाही की ओर चढ़ने लगे। चश्माशाही की सीढ़ियों पर दो योरोपियन युवतियां खड़ी थीं। हम उनके पास से ऊपर चढ़ रहे थे कि वे दोनों हमें सिर से पाँव तक देखने लगीं। अन्दर चश्मे के पास और भी कुछ लोग यहां वहां घास पर और वृक्षों के साये में बैठे थे। हम दोनों चश्मे की मण्डेर पर जा बैठे। धूप खिलकर पड़ रही थी, किन्तु हवा के झोंके उसकी उष्णता को टिकने न देते थे। कुमार की कमीज़ हवा के झोंके से उसके

शरीर के साथ चिपक रही थी। उसने मुझे कोहनी से हिलाकर उठाया और हम आसपास टहलने लगे। वहाँ बैठे हुए लोग आंख उठा २ कर हमारी ओर देख रहे थे। (या यह मेरा अपना वहम था)। एक योरोपियन युवक हमारे पास आकर कुमार से अंग्रेज़ी में बात करने लगा। अंग्रेज़ी तो थोड़ी-बहुत मैं भी समझ लेती हूँ। किन्तु उसके बोलने का ढंग कुछ ऐसा था कि मेरी समझ में कुछ न आया। कुमार ने एक वाक्य में कुछ कहा और वह युवक लौट गया। मेरे कन्धे पर हाथ रखकर आगे को चलता हुआ कुमार बोला, "यह तुम्हारा फ़ोटो लेना चाहता था। मैं ने मना कर दिया कि यह लेने नहीं देगी।"

मैं ने मुड़कर देखा। उस योरोपियन युवक के साथ उसके दो और साथी खड़े थे और वे तीनों अनिमेष हमारी ओर देख रहे थे। कुछ देर हम वहीं घास पर बैठे बातें करते रहे। फिर वहां से उठकर हम सीढ़ियां उतर आए। झील के पास पहुँच कर मैं ने कुमार से अगला प्रोग्राम पूछा। उसने वापस चलने की बात कही। मैं ने नाव खोली और हम उस में बैठ गए।

नाव धीरे २ चल रही थी। कुमार सामने से उठकर मेरे साथ आ बैठा। मेरे बालों में खोंसे हुए नरगिस के फूलों पर अंगुलियां फेरता हुआ वह बोला,

"तुम बाल इस तरह ढीले २ क्यों रखती हो?"

"क्यों, अच्छे नहीं लगते क्या?" मैं ने कन्धे से आगे झुके बालों को अपने एक हाथ में लेते हुए कहा।

"बहुत अच्छे लगते हैं, जभी तो पूछा!" और वह मेरे बालों में अंगुलियां फेरने लगा।

"बस तो समझ लो फिर..." मैं ने कहा और उसने मेरे सिर को अपने हाथों में कसकर मेरे माथे पर एक चुम्बन अंकित कर दिया।

पहाड़ों पर सफ़ेद, काले, सुरमई बादल उठ रहे थे। ऊपर आकाश में

भी सफ़ेद बादलों की कुछेक टुकड़ियां मण्डरा रही थीं। झील में उन का प्रतिबिम्ब बहुत सुहाना लग रहा था। रास्ते में कई बार कुमार ने नाव को रुकवाया और एक टक पानी में नीली पृष्ठभूमि में सफ़ेद बादलों को देखता रहा। सचमुच ऊपर की अपेक्षा झील के बीच का आस्मां बहुत खूबसूरत लग रहा था।

"अपना घर नहीं दिखाओगी मुझे?" पानी को हाथ से उछालता हुआ कुमार बोला।

"अभी चलो, थोड़ी दूर ही है। कुल मिलाकर एक घण्टे का भी रास्ता नहीं है।"

"इस समय नहीं। फिर किसी रोज चलेंगे।" और उस ने बताया कि वह कुल चार पांच दिन ही और कश्मीर में है। मेरे मन को जैसे कोई कचोट गया। मेरे हाथ में चप्पू कुछ ढीला पड़ गया। वस्तुतः कुमार के सम्पर्क में बितायी कुछ घड़ियों के आवेग में मैं भूल चली थी कि वह एक विजिटर है। मुझे महसूस होने लगा था—जैसे हम जन्म २ के बिछुड़े दो साथी जीवन की किसी आंधी में बहकर यहां आ मिले हों। मैं उसे 'पम्पोश' छोड़कर शाम को पार्क में मिलने की बात कह कर अपने घर को चली आयी।

शाम को काफ़ी देर तक हम पार्क में खड़े झील में तैर रहे शिकारों और स्टीमबोटों को देखते रहे। अनायास मैं ने कुमार की ओर देखा। वह पास से गुजर रही बालकटी पतली सी युवती की ओर निहार रहा था। मैं उस युवती को बड़ी अच्छी तरह पहचानती थी। हवा के चलन से उसकी बारीक आस्मानी रंग की साड़ी उसके शरीर के साथ लिपट रही थी। चेहरे पर उसने हल्का सा मेकअप कर रखा था। वह अपनी पतली २ अंगुलियों से बाल संवारती हुई रेस्तरां की सीढ़ियां चढ़ गयी।

"यह कौन है?" ठोड़ी पर हाथ फेरते हुए कुमार ने पूछा।

"क्यों?"

"एक बार यह सड़क पर गुजर रही थी तो अहमद ने मुझे इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ बताया था। कहता था—यह सोसाइटी गर्ल है।"

"इस में क्या शक है। अहमद ने जो बताया, ठीक ही बताया होगा। यह थोड़ी देर उसके बोट में रह भी चुकी है। इसका नाम सकीना है। यहां के एक माझी की बेटी है। चार पांच साल हुए एक विजिटर के साथ बम्बई भाग गयी थी। डेढ़ दो साल वहां रहकर लौट आयी। आजकल यहां एक होटल में रह रही है। नए २ विजिटरों और अफ़सर लोगों के साथ घूमती है। इसका बाप बेचारा शरम के मारे श्रीनगर छोड़ कर चला गया है। हमें तो अब यह इन्सान ही नहीं समझती। सभी अफ़सर इसकी मुट्ठी में हैं। एक बार 'पोलोग्राउंड' के पास एक योरोपियन साहब के साथ घूम रही थी। मैं ने इसे सलाम कहा। इस ने नजर उठा कर देखा तक नहीं। वैसे तो मुझे अच्छी तरह जानती है, मगर अब पहचानती भी नहीं..."

"खैर छोड़ो, खाक डालो इसकी जात पर।" ऊपरी होंठ जरा सा तरेर कर कुमार बोला। वहां से हटकर कुमार ने शिकारा लिया और वापस लौट गया। मुझे वहां अपनी मौसी के लड़के शफ़्फ़ारे का इन्तजार करना था। मां ने उसे बुलाया था। हमारे पड़ोस के एक गांव में मां ने उसके लिए एक लड़की देखी थी। लड़की मां को पसन्द थी। अब केवल शफ़्फ़ारे की हां बाकी थी। शायद इसी लिए मां ने उसे बुला भेजा था।

तीसरे दिन पूनम थी। मैं उस शाम फूल कुछ कम लेकर आयी थी। फूल जल्दी बिक गए। बचा तो नरगिस के फूलों का एक गजरा, जो बिकाऊ न था। मैं फूल बेचकर चुकी और पार्क में चली गयी। पार्क विजिटर स्त्री पुरुषों से खचाखच भरा हुआ था। झील में दूर २ तक शिकारे ही शिकारे दिखाई देते थे। स्टीमबोट पानी पीछे की ओर उछालते हुए तेजी से चक्कर काट रहे थे। मैं बिजली के उसी खम्बे के पास जाकर खड़ी हो गयी। पूर्व की ओर पहाड़ों के ऊपर से चांद ऊपर उठ आया था। किन्तु सुरमई बादलों ने

अपने आंचल से उसका मुँह ढांप लिया। फिर भी उस आंचल के छोरों से चांदनी की किरणें फैल रही थीं। शिकारों और स्टीमबोटों के चलने से झील का पानी हिल रहा था; साथ ही चांदनी की बाहें कुनमुना रही थीं। मैं ने झट से जाकर अपनी नाव खोली और 'पम्पोश' की ओर चल दी। जाकर देखा कुमार हाऊसबोट की छत पर कुरसी डालकर बैठा दूर झील में देख रहा था। शायद पानी के गर्भ में बादलों और चांद की आंखमिचौनी देख रहा था। मैं ने धीमे से आवाज दी। वह नीचे उतर आया और उन्हीं कपड़ों में मेरे साथ हो लिया।

मैं ने पार्क पहुँच कर मौसी के पड़ोसी माली रमज़ान से बत्ती मांगी। वह सीढ़ियों पर बैठा बीड़ी पी रहा था और बत्ती उसने बुझा कर अपने पास रखी हुई थी। मैं ने जान लिया कि वह सवारी के इन्तज़ार में नहीं है। मैं ने उससे दियासिलाई की डिब्बी मांग कर बत्ती जलायी और नाव लेकर शिकारों से परे निकल गयी। हमारी विपरीत दिशा में हवा तेज़ी से बह रही थी। अतः नाव धीरे २ सरक रही थी। ऊपर आकाश पर बादल छट रहे थे और चांदनी खुलकर झील में पड़ रही थी। थोड़ी ही देर में आकाश बिलकुल साफ़ हो गया। अब पूरे चांद की चांदनी थी, पहाड़ जिस में नहलाए जा रहे थे, झील के पानी में लहरें जिसे चूमने के लिए ऊपर उठ रही थीं। झील के सीने में उगी झाऊ और काई के मद्दम साए पानी में पड़ रहे थे। पार्क, सड़क और शंकराचार्य के मन्दिर वाली उपत्यका की बत्तियां चांदनी में निश्चल खड़ी थीं। झील की छाती पर शिकारों की बत्तियां नाच रही थीं। हम पार्क से काफ़ी दूर निकल आए थे। मेरे हाथ से चप्पू कुमार ने ले लिया और मुझे अपने साथ बैठ जाने को कहा। अब जहां हमारी नाव चल रही थी, वहां दोनों ओर ऊँची २ काई उगी हुई थी। हमारी नाव झील के बीच काई से बनी उस गली में सरकती जा रही थी। कुमार नाव को ज़रा आगे ले जाकर बोला,

"रेशमां, बत्ती बुझा दो तो कैसा रहे? पूनम की रात में बत्ती का

आसरा लेकर चलना चांद की हत्तक नहीं क्या ?..."

मैं ने उठकर नाव के अगले सिरे बन्धी बत्ती बुझा दी और पुनः उसके पास आ बैठी। वह धीरे ५ चप्पू चलाता रहा। काई के झुरमुट से आगे निकल कर झील का खुला फैलाव आया। कुमार ने चप्पू खींचकर नाव में रख लिया और विपरीत दिशा में हाथ चलाकर नाव खड़ी कर ली।

"क्या बात है ?" मैं ने उसकी पीठ सहलाते हुए पूछा।

"यूं ही, चांदनी की यह बिछलन बहुत सुहानी लग रही है। यहां कुछ देर रुक कर चलते हैं।...रेशमां, सूर्य और चांद में यही अन्तर है। सूर्य हर चीज़ को उसके अपने रंग में प्रकट हो लेने देता है और चांद सब को अपने रंग में रंग लेता है। यह देखो, सारी सृष्टि उस की ज्योत्सना में नहा रही है...मुझे कई बार लगता है रेशमां ! कि हम सब पूनम के साए मात्र हैं, चांद के बुझते ही जिनका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता।" और उसने दायीं ओर झील में पड़ रहे मेरे और अपने सायों पर हाथ घुमाया। झील का पानी रेशमी साड़ी की सलवटों की तरह लहराने लगा। साए उसी तरह निश्चल रहे।

चारों ओर पूर्ण निस्तब्धता थी। दूर कहीं से किसी हांजी के गाने का स्वर सुनाई दिया। वह कश्मीरी लहजे में उर्दू शायरी की कुछ पंक्तियाँ गा रहा था। उसका कंठस्वर जैसे झील की उजली लहरों पर इतराता हुआ हम तक आ रहा था—

बाग़े निशात के गुलो
शाद रहो जवाँ रहो,
तुम पे निसार जन्नतें
रूह फ़ज़ां मुसर्रतें।
मस्त नशे में रात दिन
खुर्रमो शादमां रहो,
बाग़े निशात के गुलो !

चप्पू की छपछप हांजी के स्वर को संगीत दे रही थी और रात की नीरवता उसके लिए समां बांधे थी और फिर आस्मां पर चांदनी के कगार की निश्छल मुस्कान। हांजी का स्वर धीरे २ दूर होता जा रहा था—

हुस्नो जमालो कश्मीर
दिलकशो शोख़ व दिलपज़ीर
अपना वतन है वेनज़ीर।
प्यारे वतन के दोस्तो
सरकशो कामरां रहो।
बाग़े निशात के गुलो
शाद रहो जहां रहो!
बाग़े निशात के गुलो...

हम चुपचाप गान सुन रहे थे। मैं कुमार के साथ सटकर बैठी उसकी पीठ सहला रही थी। वह मेरे अधखुले बालों में अंगुलियां घुमा रहा था। सहसा उसने मुझे अपनी बाहों की जकड़ में कस लिया। झील सोई हुई थी, झाऊ और काई के बबूल सोये हुए थे, नाव मंत्रमुग्ध निश्चल.... और हम दो प्राणी जाग रहे थे, एक दूसरे में समाजाने को अधीर; ऊपर चांद देख रहा था और मुस्करा रहा था। कुमार ने मेरा कन्धा जोर से भींचकर मुझे अपनी गोद में डाल लिया। मेरा रोम २ जैसे निस्पन्द पड़ गया। वह अपनी देह की कसन देता हुआ रोम २ सहलाता रहा। उस क्षण की उष्णता में मैं ने प्राण तन से चाहा कि जीवन भर इसी तरह निस्पन्द पड़ी रहूं। कुमार के स्पर्श और उसकी देह की उष्णता मेरे अंतरंग में समाती जा रही थी। मैं आंखें मूंदे उसकी गोद में पड़ी अपने ऊपर कछार की तरह झुकी उसकी छाती सहला रही थी कि एकाएक पानी में चप्पू की आवाज़ सुनायी दी। कुमार ने अपनी जकड़ ढीली की और मेरे बालों से अंगुलियां निकालकर निश्चल बैठ गया। मैं ने उचक कर देखा—सामने से एक शिकारा धीरे २ हमारी ओर बढ़ता आ रहा

था। उस शिकारे के आगे बत्ती टिमटिमा रही थी और पीछे माझी चप्पू चला रहा था। माझी के अतिरिक्त शिकारे में दो प्राणी और थे। उनके साये ही हमें दिखाई दे रहे थे। दोनों साये एक दूसरे से जुड़े हुए थे। शिकारा ज़रा पास आया तो वे साये झट से अलग हो गए। वे शायद हमें देखकर जुदा हुए थे। शिकारा तैरता हुआ हमारे पास से गुज़र गया। पास से गुज़रने पर शिकारे में बैठी हुई युवती ने गरदन ज़रा घुमाकर हमारी ओर देखा। युवक सामने झील पर बिछी चांदनी को निहार रहा था। युवती के बनाव-सिंगार से मालूम हुआ कि वह कोई नवविवाहित दम्पति पूनम मना रहा था—सारी सृष्टि से बेख़बर सपनों की गोद में, झील की डोली में, चांदतारों की साक्षी में। माझी की ओर पर्दा लटक रहा था, जो हवा के कारण हिल रहा था और माझी अपने ध्यान में मग्न चप्पू चलाये जा रहा था। शिकारा आगे निकल जाने के बाद बाईं ओर मुड़ा तो मैंने देखा—वे दोनों साये फिर आपस में उलझ गये हैं।

मैं एक हाथ से पानी उछालती हुई अपने सम्बन्ध में सोच रही थी कि कहां २ के दो पंछी और किस नीड़ में आ मिले हैं। कुमार ने फिर मेरा सिर अपनी छाती से लगा लिया। वह धीरे २ अपनी अंगुलियों से मेरे माथे पर झुक आए बालों को सहलाता रहा और मैं ऊपर आकाशगङ्गा को देखती रही।

चांद सिर पर आ गया था। पूनम के साये सिमट गये थे। चांदनी की बिछलन और भी दुग्ध-धवल हो गई। मैं ने चप्पू पकड़ते हुए कहा, "अब चलें वापस।"

कुमार चुप रहा मैं ने चप्पू पानी में फेंका। जैसे समूची झील जाग पड़ी हो। मैं धीरे २ नाव खेने लगी।

"तो अब चले ही जाओगे?" मैं ने धीमी सी आवाज़ में पूछा।

"जाना ही होगा!.....परसों के लिये हवाईजहाज़ की सीट रिज़र्व करवाई है।"

"फिर लौटोगे कभी?" मैं ने उसके बालों पर हाथ फेरकर पूछा।

"क्यों नहीं, जरूर आऊँगा।"

"अच्छा, वचन दिया है, याद रखना। जाने क्यों मैं तुम्हें विजिटर समझती ही नहीं। वरना यहां आकर लौटने का वायदा देकर चले जानेवाले फिर कभी सूरत तक नहीं दिखाते....."

नाव पार्क के पास पहुँच गयी तो कुमार बोला, "रेशमाँ, तुम मुझे यहीं उतार दो। यहां से पैदल सैर करता चला जाऊँगा।"

मैं ने घाट पर नाव खड़ी कर दी। वह उतर गया।

"जरा ठहरो!" एकाएक मुझे ध्यान आया और मैं ने नाव में एक ओर रखा हुआ नरगिस के फूलों का गजरा उठाकर उसकी ओर बढ़ा दिया"

"यह लो इस पूनम की निशानी।" और मैं नाव से उतरकर उसके पास जाकर खड़ी हो गयी। उसने मुझे अपनी बाहों में बांध घेरा और मेरी कमर पर हाथ फेरता रहा। मैं उसकी कमर को अपनी बाहों में कसे निश्चल खड़ी रही। फिर मेरे बालों को जोर से पकड़कर उसने मेरा मुंह ऊपर किया और मेरे गाल पर अपना गाल सहलाता हुआ कुमार बोला,

"कल चलूँगा तुम्हारे घर, शाम को। और उस ने मुझे मेरे कन्धों पर हाथ रखकर सीधे खड़ा किया। मैं उसकी आंखों में झांकती रही।

"अच्छा बाबूजी!"

"शी....." उस ने मेरे गाल पर हल्की सी चपत लगाई और बाजू हवा में लहराता हुआ सड़क पर चलता गया। जब तक वह आंखों से ओझिल नहीं हो गया, मैं अनिमेष उसे देखती रही।

× × ×

मैं ने कुमार के सम्बन्ध में मां से पहले भी बात की थी। मां ने कहा था—"अगर वह चाह कर हमारा घर देखना ही चाहता है, तो उसे ले क्यों नहीं आती। वरना हमारे घर कौन क़दम रखता है।.. फिर तू भी तो चाहती है। विजिटर है तो क्या हुआ? सभी लोग एक से होते हैं? ...तुम ज़रूर लाओ उसे!"

मैं अगले दिन फूल बेचने नहीं गयी। अपने छोटे भाई नूरे को साथ लेकर सांझ ढले पार्क पहुँच गई। पार्क में नूरा मेरी अंगुली पकड़े घूम रहा था। उसकी निगाह कहीं एक जगह टिक न रही थी। कभी किसी विज़िटर के साथ चल रहे किसी बच्चे को देखता, कभी शिकारों में सैर कर रही युवतियों को, कभी रेस्तरां की सीढ़ियां चढ़ रहे व्यक्तियों को और कभी घाट पर बैठे हाजियों की ओर उसकी निगाह घूम जाती। स्टीमबोट घरघराता हुआ पास आया तो नूरा उस में बैठे बच्चों की ओर हसरत भरी नज़रों से देखने लगा।

"इस में सैर करोगे?" स्टीमबोट की ओर अंगुली उठाकर मैं ने नूरे से पूछा। नूरा मेरी अंगुली पकड़े नीचे की ओर देखता रहा। मैं ने स्टीमबोट वाले को आवाज़ देकर कहा कि वह नूरे को बोट में सैर करवा दे।

"बारह आने लगेंगे।" वह बोला।

"तुम से पैसे किसी ने नहीं पूछे! तुम सैर करवा दो इसे.....और यह लो बारह आने!" मैं ने जेब से पैसे निकालकर उसे दे दिये। उस ने एक बार मुझे सिर से पांव तक देखा और नूरे को अंगुली से पकड़कर बोट में ले गया।

मुझ फूल बेचनेवाली के लिये बारह आने वाक़ई बहुत बड़ी रक़म थी। यानि हमारे समूचे परिवार की दो जून की रोटी। लेकिन उस समय नूरे की मासूम आंखों में एक तीव्र ललचाहट दिखायी दी जिसे मैं सहन न कर सकती थी।

स्टीमबोट डल की छाती चीरता हुआ तीव्र गति से दौड़ रहा था। नूरा मुड़ २ कर कभी ऊपर उछल रहे पानी को देख २ कर किलकारियां भरता और कभी मेरी ओर देखकर बाजू हिला हिलाकर मुझे आवाज़ देता। स्टीमबोट का राऊंड पूरा हुआ तो नूरा उछलता कूदता मेरे पास दौड़ता चला आया।

पार्क में जमघट था और मेरी निगाह उस जनसमूह पर से तैरती हुई सूनी की सूनी लौट आती थी। मैं नूरे को नाव के अगले सिर बैठा कर डल म

सैर करवाती रही। कहां द्रुतगति से चलने वाला स्टीमबोट और कहां मन्थर २ चल रही नाव ?.....नूरा नाव के सिर पर बैठा झील में पाँव लटकाये पानी से खेल रहा था। मैं ने पार्क की ओर निगाह उठाई तो कुमार बिजली के उसी खम्बे के नीचे खड़ा हमारी ओर देखरहा था। मैं ने चप्पू तेज किया। नाव घाट के पास खड़ी की और उतर कर पार्क में उसके पास चली गयी। उस समय कुमार कुरता पायजामा पहने था और कन्धों पर उस ने शाल ओढ़ रखी थी। मैं ने नूरे को अपने आगे बाहों में लेते हुए कुमार से कहा,

"यह है मेरा छोटा भाई, नूरा।...सलाम कहो नूरे!"

"शलाम बाबूजी!" नूरे ने हाथ माथे पर लेजाकर कहा।

"वअलेकम सलाम हत्तो"! कुमार ने कश्मीरी लहजे में मुस्करा कर नूरे की ठोड़ी को हाथ से ऊपर करते हुए कहा, "कैशा खबर?"

"आशा खबर: हत्त!" नूरे ने जवाब दिया और हम तीनों हँसने लगे।

कुमार ने नूरे को कन्धों से पकड़कर अपने साथ लगा लिया और उसके सिर पर हाथ फेरता हुआ बोला, "बहुत प्यारा बच्चा है।"

थोड़ी देर हम पास ही झील में स्टीमबोटों के पीछे लगे लकड़ी के तख्तों पर जलक्रीड़ा में रत कुछ योरोपियन युवकों और युवतियों को देखते रहे। वे स्टीमबोट पानी में तेजी से दौड़ रहे थे और उनके पीछे तख्तों पर खड़ी युवतियां टांगें उछाल २ कर युवकों को आगे निकलने की चेतावनी दे रही थीं। वे जवान देहें, शरीरों की वह लचक.....युवतियों के बाल हवा में उड़ रहे थे। कई बार वह पीछे की ओर झुक कर अपने बालों को पानी से छुआ लेतीं। ऐसे में उनकी कमर और देह की लचक देखे ही बनती थी। उनकी स्वच्छन्द क्रीड़ा को देखकर सहज में सोचना पड़ता था कि जिन्दगी वास्तव में किस चिड़िया का नाम है? वे स्टीमबोट घरघराते दूर निकल गये। मैं ने घूम कर कुमार से चल पड़ने को कहा और हम तीनों घाट की ओर चल दिये।

नाव झील के गली-गैलों के बीचोबीच जल में सोये शान्त कमलों को दुलारती हुई हमारे खेत के किनारे जा लगी। खेत के उस छोर हमारे घर का दीया जल रहा था। मां बाहर आंगन में युक्लिप्टस के पेड़ के नीचे चारपाई पर बैठी शायद हमारा इन्तजार कर रही थी। उसके घर आज महमान जो आनेवाला था। नूरा नाव से उतरकर भागता हुआ मां के पास चला गया। कुमार मेरे पीछे २ आ रहा था। हमें पास आते देख मां चारपाई पर से उठ खड़ी हुई।

"अम्मां यह हैं कुमार बाबू।" मां के पास पहुँचकर मैंने कश्मीरी बोली में कहा। "और यह मेरी मां है।" मां की ओर इशारा करते हुए मैं कुमार की ओर घूमी। कुमार ने दोनों हाथ जोड़कर माथा उनपर रख दिया। मां उसकी पीठ पर हाथ फेर कर उसके लिये दुआयें मांगने लगी। नूरा पास चारपाई के साथ लगकर खड़ा सब देख रहा था।

मां ने अन्दर जाकर रोटी परोसी और मुझे आवाज़ दी। मैं ने अन्दर जाकर अपने दूसरे भाई रफ़ीक के सम्बन्ध में मां से पूछा। मां ने बताया कि वह सुबह ग़फ़्फ़ारे के साथ शहर गया था, लौटा ही नहीं, शायद वहीं रह गया हो। मैं थाली उठा लाई और जा कर कुमार के आगे चारपाई पर रख दी। दूसरी थाली नूरा लेकर आ रहा था। मां भी अपनी थाली उठा कर बाहर आ गई। तब जाना मां भी हमारे इन्तज़ार में भूखी है।

"मैं तो खा पीकर ही आया था....." कुमार ने धीमी सी आवाज में कहा।

"मेरा तो सही, मां का दिया भी टालोगे!" मैं ने कहा और दीये की रौशनी में देखा—कुमार के चेहरे पर शरम की छाया दौड़ गई थी। नूरा मां के साथ खाने लगा था और उठ २ कर कुमार की ओर देख रहा था। कुमार ने थाली में से मक्की की रोटी का एक टुकड़ा तोड़कर मुँह में डाल लिया।

"यह मक्की तो बहुत मीठी है। मीठा डाला है इस में क्या?" खाता हुआ कुमार बोला।

"यहां की मक्की होती ही ऐसी है बाबूजी !" मां ने उसकी ओर देख कर कहा। कुमार गरदन उठाकर मां की ओर देखने लगा। मैं समझ गई—वह मां से 'बाबूजी' शब्द सुनकर चौंक उठा था। फिर मेरी ओर देखकर मुस्कराता हुआ रोटी खाने लगा।

खा पी चुकने के उपरान्त कुमार ने केसर के खेत देखने की बात कही। मैं ने मां से कहा कि मैं कुमार को केसर के खेत दिखा लाऊँ।

"दिन को दिखा लेना, रात को क्या दिखेगा ?" मां बोली।

"मां जी चांदनी रात है। सैर ही हो जायेगी।" शाल तन पर लपेटते हुए कुमार ने कहा।

"तो ठीक है।" मां चारपाई से उठती हुई बोली और बरतन उठाकर अन्दर को चलदी।

काफ़ी देर तक हम खेतों की मण्डेरों पर घूमते रहे। वह मुझ से केसर की खेती के सम्बन्ध में पूछता रहा। मैं ने उसे केसर के बीज बोने से लेकर फ़सल तैय्यार होने तक की सारी गतिविधि समझा दी। उसके बाद हम खेत के एक कोने खुरमानी के वृक्ष के नीचे बैठ गये। सामने युकिलप्टस की डालियों और पत्तों के भीतर से चांद झांक रहा था। युकिलप्टस का मद्धम सा साया हमतक पहुँच रहा था। अनायास उस ने मेरा समूचा शरीर अपनी जकड़ में कस लिया और मेरे बालों पर अपने गाल फेरता रहा। कई बार उसने मेरे बालों को चूमा। उसके कुछ ही क्षण बाद मेरे माथे पर अपने होंठ घुमाता हुआ भर्राई सी आवाज़ में कुमार बोला, ".....मैं तो इस क़ाबिल न था कि तेरे जैसी रूह का प्यार पा जाता।..... रेशमां, मैं देख रहा हूं—तेरी इन नरगिसी आंखों में मेरी जवानी का मरण हो रहा है....."

मैं ने झट से उसका चेहरा अपने हाथों में लेकर देखा—उसके गाल आंसुओं से नहा रहे थे। मैं ने उसे बांह से पकड़कर उठाया। उसका शरीर शिथिल सा हो चुका था। मैं ने उसकी कमर में हाथ डालकर उसे आंगन में

युक्लिप्टस के पेड़ के नीचे बिछी चारपाई पर ला बैठाया। वहां लेटा २ वह ऊपर आकाश की ओर अनिमेष देखता रहा—जैसे गत अनगत के बीच लटक कर रह गया हो। और फिर न जाने कब और कैसे मेरी आँख लग गई और वह कब तक आकाश के दीये गिनतार हा।

सुबह आंख खुली तो धूप तमतमा रही थी। मां खेत में काम करने चली गई थी। मूरा सामने बादाम के पेड़ पर चढ़ा हुआ था। साथ की चारपाई खाली थी। मैं हड़बड़ा कर उठ बैठी। देखा—कुमार की शाल मेरे ऊपर पड़ी थी। मैं शाल को हाथों में मसलती रह गई। तभी एक सतत गूंज मेरे कानों में पड़ी। मेरी आंखों ने कानों का अनुसरण किया। ऊपर देखा तो पथरा के रह गई। आकाश में अपनी गूंज पीछे छोड़ता हुआ हवाईजहाज़ दक्षिण दिशा को उड़ा जा रहा था।

म्युनिसिपल लाइब्रेरी
Durga Sah
Municipal Library
NAINITAL
नैनीताल